प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

सत्य का दर्शन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

एक बड़ी राजधानी में राजमहल के द्वार पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। भीड़ सुबह से लगनी शुरू हुई थी और बढ़ती ही जा रही थी। जो भी आदमी आया था, वह ठहर गया था और वापस नहीं लौटा था। मैं भी भटकते हुए उस राजधानी में पहुंच गया था। और मैं भी उस भीड़ में खड़ा हो गया। कुछ बड़ी अजीब घटना उस दिन घट गई थी। इसलिए सारे नगर से लोग उसी महल की तरफ भागे हुए आ रहे थे। ऐसी तो कोई बड़ी अजीब बात न थी। सुबह ही एक भिखारी ने आकर उस द्वार पर भिक्षा मांगी थी। रोज ही सुबह द्वार पर भिखारी भिक्षा मांगते हैं, अभी वैसी दुनिया तो नहीं आ पाई जब भिखारी नहीं होंगे। इसलिए कोई बहुत अजीब बात न थी। लेकिन भिखारी ने न केवल भिक्षा मांगी, अपना भिक्षा पात्र राजा के सामने फैलाया, बल्कि उसने एक शर्त भी रखी। भिखारी कोई शर्त रखे, यह आश्चर्य की बात थी। देने वाला शर्त रखे, यह तो ठीक है। लेने वाला भी शर्त रखे, यह जरूर आश्चर्य की बात थी। और शर्त भी बड़ी अनूठी थी।

देखने में तो बहुत सरल बात मालूम पड़ी थी। और राजा उस शर्त के लिए राजी हो गया था। लेकिन पूरा करना बहुत कठिन हो रहा था।

उस भिखारी ने कहा था कि मैं एक ही शर्त पर भिक्षा लूंगा, और वह शर्त यह है कि मेरा भिक्षा पात्र पूरा भर दिया जाए। मैं अधूरा पात्र लेकर नहीं लौटूंगा। राजा के अहंकार को हंसी आ गई थी। और राजा ने कहा था तुम पागल हो? शायद तुम्हें पता नहीं तुम किसके द्वार पर भिक्षा मांग रहे हो? अगर तुम खुद अधूरा पात्र लेकर लौटना चाहते तो भी मैं तुम्हें अधूरा पात्र भरा हुआ लौटने न देता। शर्त रखने की कोई बात नहीं है। और उसने अपने वजीरों को कहा अब अन्न से भरना इसका पात्र ठीक न होगा, स्वर्ण-मुद्राओं से भर दो। उस भिखारी ने फिर कहाः एक बार सोच लें क्योंकि और राजा भी मुसीबत में पड़ चुके हैं। यह शर्त मैंने पहली बार नहीं रखी और द्वारों पर भी रखी है, और आज तक कोई भी द्वार मेरे पात्र को पूरा नहीं भर सका है। राजा हंस पड़ा, बात पर ध्यान देने की उसने जरूरत न समझी, और वजीर को कहा कि जाओ स्वर्ण अशर्फियों से पात्र भर दो। वजीर स्वर्ण अशर्फियां लाया, उसने वे पात्र में डालीं, छोटा सा पात्र था, लेकिन बड़ी अदभुत घटना घटी, पात्र में गिरते ही वे अशर्फियां न मालूम कहां विलीन हो गई? पात्र खाली का खाली रह गया। और तब भीड़ उस द्वार पर बढ़ने लगी थी। मैं भी उस भीड़ में जाकर खड़ा हो गया था। दोपहर हो गई, भिक्षु का छोटा सा पात्र राजा की बहुत बड़ी तिजोरिया न भर सकीं। सांझ होने लगी, सम्राट की तिजोरियां खाली हो गई, लेकिन भिक्षु का पात्र नहीं भरा, नहीं भरा। और तब जो सम्राट किसी से भी कभी हारा न था, वह उस भिखारी से हार गया और उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने क्षमा मांगी कि भूल हो गई है मुझसे, मैं क्षमा चाहता हूं; और आज मुझे एक बड़े सत्य का दर्शन हो गया कि सम्राट की संपत्ति भी एक भिक्षु की भूख को नहीं भर सकती। मुझे माफ कर दो मैं तुम्हारा पात्र पूरा न भर सकूंगा।

भीड़ छंट गई, राजा हार चुका था, लोग अनेक तरह की बातें करते हुए अपने घर चले गए। और वह भिखारी भी अपने रास्ते पर हो गया। लेकिन इतनी आसानी से मैं उस भिखारी को न छोड़ सका और उसके पीछे हो गया। रात गांव के बाहर मैंने उसे पकड़ लिया और उससे पूछा, क्या रहस्य है इस भिक्षा के पात्र का, जो भर नहीं सका? वह भिखारी हंसने लगा और उसने कहाः गांव-गांव मैं गया हूं, और न मालूम कितने द्वार पर कितने अहंकार पराजित हो गए, लेकिन तुम पहले आदमी हो जो मेरे पीछे आए हो और भिक्षा का इस पात्र का रहस्य पूछते हो। मैं इस आदमी की तलाश में था कि कोई मुझसे पूछे उसी के लिए मैं गांव-गांव घूम रहा हूं।

लेकिन कोई यह पूछता ही नहीं। इस भिक्षा के पात्र में कोई भी रहस्य नहीं है। और भिक्षा का पात्र उसने मेरे हाथ में दे दिया और उसने कहाः मैं एक मरघट से निकलता था और एक आदमी की खोपड़ी मुझे पड़ी मिल गई, उससे ही मैंने इस पात्र को बना लिया है। और जैसा कि सभी जानते हैं, आदमी का मन कभी भरता नहीं, इसलिए यह पात्र भी भरता नहीं है।

इस कहानी से इसलिए मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि जीवन में सबसे बड़े से बड़े रहस्यों में से समझने की जो बात है वह यही है, मनुष्य का मन जैसा है वह कभी भी भरने में समर्थ नहीं है। मनुष्य की पीड़ा, और चिंता, और दुख, और विषाद, इसी तथ्य से पैदा होते हैं। हम उस मन को भरने की कोशिश में हैं जो भरने में स्वभावतः असमर्थ है। लेकिन इस तथ्य का उदघाटन मुश्किल से ही कोई कर पाता है। और जो इस तथ्य का उदघाटन कर लेता है, उसके जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। लेकिन सामान्यतः मुश्किल से ही शायद हमारी दृष्टि में यह बात दिखाई पड़नी शुरू होती है, हम मन को भरने की कोशिश करते हैं, अनेक-अनेक दिशाओं में, धन से और यश से, और पद से महत्वाकांक्षाओं के न मालूम किन-किन मार्गों पर चल कर हम उसे भरने की कोशिश करते हैं। और इस बात को भलीभांति देखते हुए भी शायद हम अंधे बने रहते हैं कि आज तक कोई भी अपने मन को भर नहीं सका है। क्या किसी मनुष्य ने मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में यह कहने का साहस दिखाया है कि मेरा मन भर गया, मेरा मन तृप्त हो गया? क्या किसी ने लंबे दस हजार वर्षों के ज्ञात इतिहास में यह बात कही है कि मैं मन की पूर्ति पर पहुंच गया? मन की आकांक्षाएं तृप्त हो गईं। नहीं, एक भी मनुष्य ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। और हर शेष मनुष्य की जीवन कथा, मनुष्य के निरंतर खाली रह जाने की खबर देती है।

सिकंदर की जिस दिन मृत्यु हुई, और जिस नगर में उसकी अरथी निकली उस दिन एक बहुत अजीब बात लोगों ने देखी। शायद वैसा कभी भी नहीं हुआ था, और शायद आगे भी कभी नहीं होगा। सिकंदर की अरथी को देखने लाखों लोग रास्तों पर खड़े थे। कोई साधारण आदमी न मर गया था। महान सिकंदर की मृत्यु हो गई थी। लेकिन लोग देख कर हैरान हुए, उसकी अरथी बड़ी अजीब थी। अरथी के बाहर सिकंदर के दोनों हाथ लटके हुए थे। और हर कोई पूछने लगा कि ये हाथ अरथी के बाहर क्यों लटके हुए हैं? सारे नगर में एक ही बात उठ गई, सांझ होते-होते पता चला, सिकंदर ने मरने के पहले कहा थाः मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, ताकि हर आदमी देख ले मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं। मेरी दौड़, मेरी विजय यात्राएं, सब असफल हो गईं, हाथ मेरे खाली हैं। किसके हाथ भरे हुए कब गए हैं? यह बात दूसरी है कि हम हाथों को अरथियों के भीतर छिपा देते हैं ताकि कोई देख न ले कि ये हाथ खाली जा रहे हैं। लेकिन अरथियों के भीतर छिपाएं या न छिपाएं, हर आदमी की जीवन-कथा निरंतर खाली बने रहने की कथा है। यह मन का पात्र भरता नहीं है।

ऐसा नहीं है कि धन से नहीं भरता, ऐसा नहीं है कि यश से नहीं भरता, धर्म से भी नहीं भरता, त्याग से भी नहीं भरता। भरना उसका स्वभाव नहीं है, मोक्ष से भी नहीं भरता, परमात्मा से भी नहीं भरता। भरना उसका स्वभाव नहीं है। कुछ लोग धन से भरने से ऊब जाते हैं, लेकिन भरने से नहीं ऊब पाते। धन से भरने से ऊब जाते हैं, तो सोचते हैं धर्म से भर लें; यश और कीर्ति से ऊब जाते हैं और पाते हैं कि उससे मन नहीं भरता, तो सोचते हैं कि त्याग और तपश्चर्या से भर लें। लेकिन मन अगर भरने में समर्थ होता, तो धन से भी भर जाता और धर्म से भी भर जाता। मन भरने में ही असमर्थ है। मन स्वभावतः भरने में असमर्थ है। कोई बात है, जिसकी वजह से मन नहीं भर सकता है। किसी भी चीज से नहीं, और जब तक इस तथ्य को कोई साक्षात नहीं करता है, इस समग्र सत्य को कि मन को भरना ही असंभव है, तब तक किसी मनुष्य के जीवन में कोई क्रांति फलित नहीं हो सकती। तब तक कोई मनुष्य आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता; तब तक कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक मनुष्य की शुरूवात इस बात से नहीं होती कि धन से छोड़ कर हम त्याग से मन को भरने लगें।

धन और त्याग दोनों की भाषा एक ही है, धन की भाषा है और, और, और धन मिले तो शायद मन भर जाए। उतना मिल जाता है, तो पता चलता है कि मन नहीं भरा, और धन मिले तो शायद मन भर जाए, उतना भी मिल जाता है तो मन नहीं भरता। त्याग की भाषा भी और की ही भाषा है। इतना छोड़ देते हैं तो मन नहीं भरता, और छोड़ दें, तो शायद मन भर जाए। और छोड़ देते हैं फिर पता चलता है और छोड़ दें, तो शायद मन भर जाए। पकड़ने और छोड़ने का सवाल नहीं। और की भाषा समान है, और भरने की आकांक्षा समान है। अगर मन स्वभावतः भरने में असमर्थ है, तो शायद किसी रास्ते से उसे नहीं भरा जा सकेगा। और इसलिए मन के साथ, मन के भराव के लिए की गईं सारी बातें व्यर्थ हो जाती हैं। सारे निदान और सारी चिकित्सा व्यर्थ हो जाती है। और मनुष्य की जो गहरी चिंता है, जो तनाव है जो दुख है, उसके ऊपर मनुष्य नहीं उठ पाता है। अब तक हमने जो भी उपाय खोजे हैं, वे असमर्थ हो गए, असफल हो गए, शायद हमने मूल बात नहीं पूछी और इसलिए सारी गड़बड़ हो गई।

मैंने सुना है, न्यूयार्क के एक छोटे से स्कूल में, जहां न्यूयार्क के धनपतियों के बच्चे पढ़ते थे; एक छोटे से बच्चे में कुछ अजीब से लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हुए। चिंता की बात थी, लक्षण ऐसे थे कि चिंतित हो जाना जरूरी था। उस बच्चे ने इधर कोई पंद्रह-बीस दिनों से हर चीज काले रंग में रंगनी शुरू कर दी थी। वह चित्र बनाता तो काले ही रंग में बनाता। सूरज बनाता तो काले रंग और गुलाब का फूल बनाता तो काले रंग का। समुद्र बनाता तो काले रंग का, आदमी बनाता तो काले रंग का। उसकी अध्यापिका चिंतित हो गई। काले रंग का इतना मोह भीतर चित्त में किसी गहरी उदासी और दुख का, दुख की खबर देता था। स्कूल के मनोवैज्ञानिक को खबर की गई, उस बच्चे में ये काले के प्रति इतना मोह, अंधेरे के प्रति इतना आकर्षण शुभ नहीं था। जीवन का सूचक नहीं था। मृत्यु की खबर देता था। चिंता जरूरी थी, उसका इलाज होना जरूरी था। उसके भीतर कोई बात घटित हो रही थी, जो बाहर काले रंगों में प्रकट होने लगी थी।

एक आदमी हंसता है तो भीतर की कोई खबर लाता है, एक आदमी रोता है तो भीतर की कोई खबर लाता है; एक व्यक्ति काले रंगों के प्रति आकर्षित हो जाए तो भीतर की खबर देता है।

उस बच्चे के जीवन में कुछ हो रहा था, जिसकी खोज-बीन जरूरी थी। मनोवैज्ञानिक ने पंद्रह दिनों तक खोज-बीन की--उस बच्चे के घर में जाकर, और उस बच्चे के पड़ोस में, उस बच्चे के संबंध में सारी जानकारी इकट्ठी की, और पंद्रह दिन बाद एक बड़ी रिपोर्ट पेश की, जिसमें बहुत से कारण बताए गए थे। बच्चे की घर की जिंदगी शायद सुखद नहीं थी, बच्चे के मां-बाप के बीच शायद अच्छे संबंध नहीं थे, झगड़ा था, विरोध था; घर का वातावरण उदास था, प्रसन्न नहीं था। आस-पास भी अच्छे लोग नहीं थे पड़ोस में। इन सबका शायद परिणाम बच्चे पर पड़ना शुरू हुआ था। बच्चे की मां जब बच्चा गर्भ में था तब बीमार रही थी, शायद उसके परिणाम हुए थे। स्कूल के चिकित्सक को भी कहा गया, उसने भी जांच-पड़ताल की, उसने बताया किन्हीं विटामिंस की कमी है, शायद उनकी वजह से बच्चा उदास और शिथिल हो गया है। शायद जीवन में उसके आनंद और थिरक में कमी हो गई। ये सारी रिपोटे आ गई और उसके पहले कि इलाज शुरू होता एक और घटना घट गई, जिसने सारे निदान को गलत कर दिया। स्कूल के चपरासी ने बच्चे को निकलते वक्त स्कूल से एकदम उसके कान में पूछा, कि मेरे बेटे, मुझे तो बताओ तुम काले रंग से ही चित्र क्यों बनाते हो? उस बच्चे ने कहाः सच बात तो यह है कि मेरी डिब्बी के और सब रंग खो गए हैं, केवल काला रंग ही बचा है। और कोई बात नहीं है। उसे दूसरे रंग दे दिए गए, और उसने दूसरे दिन से ही काले रंग में चित्रों का बनाना बंद कर दिया।

बात उतनी ही थी कि उसकी डिब्बी के और रंग खो गए थे। लेकिन इन विशेषज्ञों ने बड़ी बातें खोज निकाली थीं। और उन बातों के आधार पर अगर उस बच्चे का इलाज होता तो आप सोच सकते हैं क्या हुआ होता? तो उस बच्चे का बचना मुश्किल हो जाता। वे इलाज खतरनाक सिद्ध होते। क्योंकि जो बीमारी ही न हो,

उसकी चिकित्सा सिवाय खतरे के और क्या ला सकती है? मनुष्य के साथ भी बहुत तरह के इलाज किए गए हैं। और मनुष्य के साथ सब इलाज खतरनाक सिद्ध हुए हैं। क्योंकि शायद हमने उसके भीतर गहरे में जाकर यह पूछा ही नहीं; असल बात क्या है? आदमी के भीतर हमने ठीक-ठीक समस्या को पकड़ने की कोशिश नहीं की है, और इलाज शुरू हो गए हैं। पांच-छह हजार वर्षों से मनुष्य के सब भांति के इलाज हो रहे हैं। सब तरह के विशेषज्ञ उसकी चिकित्सा कर रहे हैं। और सच्चाई यह है कि मनुष्य ज्यादा से ज्यादा बीमार होता जा रहा है। स्वस्थ नहीं हो रहा है।

सारे धर्मों के इलाज, सारे विशेषज्ञों, सारे पुरोहितों, सारे गुरुओं की चिकित्साएं आदमी को और मरणासन्न किए दे रही हैं। और अगर यह इलाज जारी रहे तो शायद आदमी के बचने की बहुत दिन संभावना नहीं है। चिकित्सक बहुत हैं और गरीब आदमी उनके बीच फंस गया है। और शायद हम यह पूछना ही भूल गए हैं, एक सीधा सा सवाल, या आदमी की सारी बीमारी, आदमी की चिंता और दुख, उसकी बेचैनी, उसकी अशांति कहीं मन के स्वभाव के साथ ही तो संबंधित नहीं है?

एक मुसलमान फकीर था। एक सुबह एक व्यक्ति ने उससे जाकर कहा, मैं ईश्वर को खोजना चाहता हूं, मोक्ष पाना चाहता हूं, कोई रास्ता है? मन मेरा अशांत है, उसे शांत करना चाहता हूं, कोई मार्ग है? उस फकीर ने कहाः अभी तो मैं कुंए पर पानी भरने जा रहा हूं, मेरे साथ आओ, अगर कुएं से वापस लौटते वक्त भी मेरे साथ बने रहे, तो शायद मैं कोई रास्ता सुझाऊं। वह आदमी हैरान हुआ कि कुएं से वापस लौटते वक्त ऐसी क्या कठिनाई होने वाली है कि मैं साथ न रहूंगा? वह फकीर के पीछे कुएं की तरफ गया। फकीर अपने घर से एक बाल्टी और एक बड़ा ड्रम लेकर निकला। उस आदमी ने देखा, तभी उसे शक हुआ, ड्रम बड़ा अजीब था; उसमें कोई पेंदी न थी, उसमें कोई तलहटी न थी, वह दोनों तरफ से पोला था। क्या फकीर इसमें पानी भरने जा रहा है? लेकिन बीच में कुछ बोलना ठीक न था, वह कुएं तक गया। फकीर ने वह ड्रम कुएं के पाट पर रखा, जो दोनों तरफ पोला था, कोई तलहटी न थी, कोई बॉटम न थी। बाल्टी कुएं में डाली, पानी खींचा, और बाल्टी खींच कर उस खाली ड्रम में डाली। पानी नीचे से बह गया। ड्रम खाली का खाली रह गया। उसने दुबारा बाल्टी डाली। वह आदमी बहुत साहस करके, बहुत धीरज रख कर खड़ा रहा, सोचा कि मेरा बोलना बीच में ठीक नहीं है, क्या इस आदमी को खुद यह बात दिखाई नहीं पड़ रही होगी कि पानी जिसमें डाला गया है उसमें भर नहीं सकेगा? दूसरी बाल्टी भरी गई, और उस फकीर ने उसे भी उस ड्रम में डाल दिया। वह पानी भी बह गया। और फकीर तीसरी बाल्टी भरने लगा, उस आदमी का धीरज टूट गया। किसी का भी टूट जाता। उसने फकीर के कंधे पर हाथ रखा और कहा, महानुभव, ऐसे तो जिंदगी भर भरने से भी यह ड्रम भरने वाला नहीं है। कृपा करके देखें तो सही, इस ड्रम में कोई तलहटी नहीं है, इसमें कोई पेंदी नहीं है। यह पानी भरेगा नहीं।

उस फकीर ने कहाः तुमसे किसने सलाह मांगी है? तुम मुझसे ज्ञान लेने आए थे या मुझे ज्ञान देने आए हो? उस फकीर ने कहा, अक्सर मैं देखता हूं, जो लोग शिष्य बनने आते हैं थोड़ी देर में ही गुरु हो जाते हैं। तुमसे किसने पूछा? बिना मांगे जो आदमी सलाह देता है उससे ज्यादा नासमझ कोई और है? तुमने अपनी नासमझी सिद्ध कर दी। और फिर मुझे इस ड्रम में पानी भरना है, तो मैं ड्रम के ऊपर की तरफ आंखें गड़ाए हुए हूं, जब पानी वहां तक आ जाएगा, तो मैं घर चला जाऊंगा। मुझे पेंदी से क्या लेना-देना? मैं ऊपर की तरफ देख रहा हूं कि जब पानी भर जाएगा तो ऊपर की कगार तक आ जाएगा, तब मैं उठा कर घर ले जाऊंगा। मुझे ऊपर की कगार तक पानी भरना है, बॉटम से मुझे क्या लेना-देना? उसने अपनी बाल्टी फिर कुएं में डाल दी। उस आदमी ने सोचा, इस आदमी के पास अब और खड़े रहना ठीक नहीं है। यह आदमी पागल मालूम होता है। वह आदमी मुड़ा और अपने घर की तरफ चला गया।

फकीर हंसा होगा और अपने ड्रम और बाल्टी को लेकर अपने घर चला गया। घर पहुंच कर उस आदमी ने सोचा कि अरे, उसने मुझसे कहा था कि अगर लौटते में भी मेरे साथ रहे तो शायद मैं रास्ता बताऊं। मैं तो बीच में ही वापस आ गया हूं। और उसने रात सोचा, कि जो सीधी सी बात मुझे दिखाई पड़ती थी, क्या उस फकीर को न दिखाई पड़ती होगी? फिर मैं क्यों बीच में बोला? कहीं इसमें कोई राज न हो, कोई रहस्य न हो; सुबह वह वापस लौटा, और फकीर के पास गया और कहाः मैं क्षमा मांगता हूं। मैं यह पूछने आया हूं, आप मुझे क्या सिखाना चाहते थे? वह फकीर बोलाः तुम आदमी थोड़े समझदार हो, यह मेरी पुरानी तरकीब है, नासमझ लोगों से छुटकारा पाने की। जो भी मुझसे पूछने आता है, पहले मैं उसे कुएं पर ही ले जाता हूं, यही ड्रम और यही बाल्टी। अक्सर तो लोग भाग जाते हैं फिर कभी नहीं लौटते। तुम वापस आ गए हो, तो मैं तुमसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि जिस मन को तुम भरना चाहते हो--आनंद से, परमात्मा से--कभी तुमने गौर किया, उसमें कोई बॉटम है, कोई तलहटी है? कभी भीतर खोज-बीन की कि कहीं इस ड्रम की तरह ही वह पोला न हो? और तुम भरते चले जाओ और वह खाली का खाली बना रहे। तो जाओ पहले मन को खोजो, अगर उसमें तलहटी हो तो मेरे पास आ जाना, मैं तुम्हारे मन को भर दूंगा। और अगर तलहटी न हो, और अगर यह सत्य का तुम्हें दर्शन हो जाए कि यह मन भरा ही नहीं जा सकता, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, उसी क्षण तुम्हारी भरने की दौड़ समाप्त हो जाएगी और जिस क्षण तुम्हारी यह दौड़ समाप्त हो जाएगी, तुम पाओगे कि तुम सदा से ही भरे हुए हो। जिस क्षण इस मन से तुम्हारा यह आग्रह छूट जाएगा कि मैं इसे भरूं, उसी क्षण तुम पाओगे कि मन के पीछे कोई मौजूद है जो निरंतर भरा हुआ है, जो कभी खाली ही नहीं है। उस सत्य का नाम ही आत्मा है।

मन को भरने की एक दौड़ है, और इस भरने की दौड़ में ही हम आत्मा को नहीं देख पाते हैं। मन को भरने की एक विक्षिप्त दौड़ है, और इस दौड़ में ही व्यस्त होने के कारण हम उसे नहीं उपलब्ध हो पाते हैं जो हम हैं। इस दौड़ से मुक्त हुए बिना, कोई स्वयं की अनुभूति को उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन इस दौड़ से मुक्त होने के लिए कोई प्रयास, कोई पाजिटिव एफर्ट, कोई विधायक चेष्टा, कोई साधना काम नहीं दे सकती। इस मन से मुक्त होने के लिए हम कुछ और कुछ भी करेंगे, वह भी मन को ही भरने की दिशा में एक चेष्टा होगी। इस मन से मुक्त होने के लिए इस मन को जानना जरूरी है। इससे पूरी तरह से परिचित होना जरूरी है। इसकी पूरी स्थिति को देखना जरूरी है। और जिस दिन यह दिखाई पड़ जाता है, कि मन तो एक बॉटमलेस पिट है, एक अतल खाई है, जिसमें कुछ भी भरा नहीं जा सकता है। जिस दिन यह अतल खाई, मन की स्पष्ट दर्शन में आ जाती है, उसी दिन मनुष्य एक दूसरे... एक दूसरे आयाम में, एक दूसरी दिशा में गतिमान हो जाता है। जहां कभी भी कुछ खाली नहीं है, जहां सब कुछ भरा हुआ है। उस दिशा का नाम ही परमात्मा है। और दो ही दिशाएं हैं, एक मन को भरने की दिशा, जो असफल है, सतत असफल है, जो व्यर्थ है और जिसके अंतिम परिणाम में खाली हाथों के अतिरिक्त और कुछ उपलब्ध नहीं हो सकता है।

इस मन को कैसे जाना जा सकता है? इस दिशा में ही इन दो दिनों में आपसे बात करूंगा। पहली बात- हम सारे लोग मन को जानने की बात तो दूर रही, इसे जानने से बचना चाहते हैं। जानने की बात तो बहुत दूर हम अपनी आंखें चुरा लेना चाहते हैं इस मन से कि कहीं इससे मिलना न हो जाए। कोई आदमी अपनी शक्ल देखने को तैयार नहीं है। कोई आदमी जैसा वह है, वैसा ही अपने को उघाड़ कर देखने का साहस नहीं करता। हम तो अपने से भाग रहे हैं और भागते-भागते हम रास्ते में जो भी मिलता है, उससे पूछते चलते हैं, आत्मज्ञान का कोई रास्ता है? अपने से भाग रहे हैं और आत्मज्ञान को उपलब्ध होना चाहते हैं। ये दोनों बातें अत्यंत मूढ़तापूर्ण हैं। ये दोनों बातें इतनी विरोधी हैं कि इससे बड़ा और कोई विरोध, इससे बड़ा और कोई कंट्राडिक्शन नहीं हो सकता। पूछें अपने से कहीं मैं अपने से भाग तो नहीं रहा हूं? हम सब भाग रहे हैं। भागने के हमने बहुत

से रास्ते ईजाद कर लिए। कोई भी आदमी ठीक अपने आमने-सामने नहीं होना चाहता है। आंख चुराता है अपने से। और इस आंख चुराने के लिए जो उपाय करता है वह यह कि जो वह नहीं है वही अपने को समझ लेता है। हिंसक व्यक्ति अपने को अहिंसक समझ लेता है। अधार्मिक व्यक्ति अपने को धार्मिक समझ लेता है, ताकि जो अधार्मिकता है वह दिखाई न पड़े। वह आमने-सामने न आ जाए। वह सस्ती तरकीबें खोज लेता है। अधार्मिक व्यक्ति रोज सुबह उठ कर मंदिर जाने लगता है, ताकि उसे दिखाई पड़ने लगे कि मैं धार्मिक हूं। हिंसक व्यक्ति पानी छान कर पीने लगता है, ताकि उसे दिखाई पड़ने लगे कि मैं अहिंसक हूं। कामुकता से भरा हुआ व्यक्ति ब्रह्मचर्य के व्रत ले लेता है, ताकि उसे दिखाई पड़ने लगे कि मैं काम और सेक्स से मुक्त हूं। हम जो हैं उससे विरोधी वस्त्र अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं। हम जो हैं उससे ठीक उलटी शक्ल, उससे ठीक उलटे मुखौटे, उससे ठीक उलटे वस्त्र हम अपने ऊपर ढांक लेते हैं ताकि दिखाई न पड़े। ताकि दूसरों की आंखों में तो हम छिप ही जाएं, अपनी आंखों में भी छिप जाएं। एक धोखा चल रहा है, दूसरे के साथ नहीं अपने साथ। दूसरों के धोखे हमें दिखाई पड़ जाते हैं, लेकिन खुद जो हम अपने को धोखा दे रहे हैं वह दिखाई नहीं पड़ता।

मैंने सुना है, एक स्कूल में सुबह ही सुबह स्कूल का इंस्पेक्टर निरिक्षण करने को आ गया था। वह पहली ही कक्षा में जो उसके सामने पड़ी उसके भीतर गया। और उसने जाकर तख्ते पर एक सवाल लिखा और विद्यार्थियों से कहाः कि तुम में से जो भी तीन विद्यार्थी इस कक्षा में सर्वाधिक कुशल हो, वे खड़े हो जाएं और एक के बाद एक आकर सवाल को हल करें। आकस्मिक निरीक्षण करने वह स्कूल में आया था। एक विद्यार्थी उठा, जो कक्षा में प्रथम था, उसने आकर बोर्ड पर सवाल किया, ठीक सवाल किया था, लौट कर अपनी जगह जाकर बैठ गया। दूसरा विद्यार्थी उठा, जो कक्षा में द्वितीय था, उसने भी आकर सवाल किया और अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर तीसरा विद्यार्थी उठा, लेकिन तीसरा थोड़ा झिझका, झिझकते हुए बोर्ड के पास आया और सवाल जैसे ही हल करने को था, उस इंस्पेक्टर ने गौर से देखा, तो पाया, यह तो वही विद्यार्थी है जो पहले भी आया था। पहली बार जो आया था यह वही है। और उसने उसका हाथ पकड़ा और कहाः तुम मुझे धोखा दे रहे हो, तुम तो पहली दफा आकर सवाल हल कर चुके हो? तीसरा विद्यार्थी कहां है? उस विद्यार्थी ने कहाः माफ करिए, तीसरा विद्यार्थी आज मौजूद नहीं है, वह क्रिकेट का खेल देखने गया हुआ है और मुझसे कह गया है कि मेरी जगह कोई भी काम हो तो तुम कर देना।

इंस्पेक्टर तो आग बबूला हो गया। उसने कहा यह क्या बात है? क्या तुम दूसरे की जगह परीक्षा दोगे? क्या तुम दूसरे की जगह सवाल करोगे? ये मैंने कभी आज तक सुना ही नहीं, हद धोखा चल रहा है। उसने विद्यार्थी को डांटा, और कुछ नैतिक शिक्षाओं का उपदेश दिया। ऐसा मौका मिल जाए तो शिक्षा कोई भी देता है, छोड़ता नहीं। और उस विद्यार्थी को डांटने के बाद वह शिक्षक की तरफ मुड़ा, जो बोर्ड के पास खड़ा हुआ था। और उससे कहाः महाशय! मैं तो अपरिचित हूं, लेकिन आप तो इस कक्षा से भलीभांति परिचित हैं, आप भी खड़े देखते रहे कि यह विद्यार्थी धोखा दे रहा है और आपने मुझसे कुछ कहा नहीं। उस शिक्षक ने आंख नीची की और कहाः महानुभाव, मैं भी इन्हें पहचानता नहीं हूं। वह इंस्पेक्टर तो हैरान हो गया। उसने कहाः इस कक्षा के शिक्षक हैं और पहचानते नहीं? उसने कहाः असल बात यह है कि कक्षा का शिक्षक क्रिकेट का खेल देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि जरा मैं उसकी क्लास देख लूं। मैं इस कक्षा का शिक्षक नहीं हूं।

तब तो बात और भी बिगड़ गई। और इंस्पेक्टर की आंखों से आग निकलने लगी। और वह पैर पटकने लगा और चिल्लाने लगा और उसने कहा कि यह तो हद हो गई। यह तो धोखे की हद हो गई! विद्यार्थी धोखा दे तो दे आप शिक्षक होकर भी धोखा दे रहे हैं? और उसने शिक्षक को भी कुछ उपदेश की बातें कहीं।

अंत में जब वह चलने लगा, तब उसने कहा, बच्चों और शिक्षक को कहाः महाशय, आप भगवान को धन्यवाद दीजिए, नहीं तो आपकी जिंदगी खराब हो जाती, नौकरी पर आंच आ जाती। वह तो अच्छा हुआ कि

असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का खेल देखने गया है। मैं तो उसका दोस्त हूं जो उसकी जगह निरीक्षण करने आ गया हूं।

यह हमें हंसने जैसी बात मालूम होती है। लेकिन जिंदगी ने ऐसे ही रास्ते पकड़ लिए हैं, जहां सब धोखा हो गया है। जहां हम सब किसी और की जगह खड़े हुए मालूम हो रहे हैं। जहां हम सब किसी और के चेहरे लगाए हुए हैं। जहां हम सब किसी और के कपड़े पहने हुए हैं, जहां हम सब वहां नहीं है, जो हम हैं, बल्कि कहीं और कुछ और दिखलाई दे रहे हैं, दिखलाई देने की कोशिश कर रहे हैं। और इस सारे धोखे में किसी और का नुकसान होता हो या न होता हो, एक बात निश्चित हो जाती है, स्वयं से परिचित होने के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, क्योंकि इस निरंतर धोखाधड़ी में हम भूल ही जाते हैं कि हम कौन हैं? वस्तुतः हम कौन हैं?

अपने को पहचानने के लिए, जो झूठे वस्त्र हमने पहन रखे हैं और झूठी शक्लें बना रखी हैं, उन शक्लों को और वस्त्रों को उतार देना अत्यंत आवश्यक है। इसे ही मैं तपश्चर्या कहता हूं। जो अभिनय हमने ओढ़ रखे हैं, उनको अलग कर देना ही तपश्चर्या है। वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाना बहुत आसान है, लेकिन मन पर और व्यक्तित्व के जो हमने वस्त्र ओढ़ रखे हैं, उनको छोड़ कर नग्न होना, बहुत कठिन है। वही कठिनाई है मनुष्य के आत्म-ज्ञान के मार्ग पर। वही कठिनाई है उसके चित्त के पूरे उदघाटन में, सोचें और हम देखें कि हम जो दूसरों को दिखला रहे हैं कि हम हैं, वे हम हैं, हमने जो नाटक खेल रखा है जीवन में, हमने जीवन को तो एक मंच बना रखा है, जहां हम दूसरों का अभिनय कर रहे हैं। और धीरे-धीरे यह भूल गए हैं कि यह अभिनय था। आदमी भूल जाता है धीरे-धीरे।

बर्ट्रेंड रसल ने एक संस्मरण लिखा है। और लिखा है, एक दिन सुबह मैं अपने द्वार के बाहर बैठा हुआ था और एक आदमी आया और उसने कहाः महाशय! आप बड़ी कठिन किताबें लिखते हैं, खैर आपकी ज्यादा किताबें तो मैंने पढ़ी नहीं, लेकिन एक किताब मैंने पढ़ी जिसमें मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। एक वाक्य भर मेरी समझ में आया और वह वाक्य एकदम गलत है। जो समझ में आया है वह एकदम गलत है, झूठ है वह वाक्य। बर्ट्रेंड रसल ने कहा कि कौन सा वह वाक्य है जो आपकी समझ में आया? और क्या भूल है उसमें? उस आदमी ने कहाः आपने लिखा हैः सिजर इ.ज डेड। सिजर मर चुका है। यही मेरी समझ में आया और यह बिल्कुल झूठ है, यह बात अफवाह है।

बर्ट्रेंड रसल तो हैरान हो गया! सिजर को मरे तो सैकड़ों वर्ष हो चुके। उन्होंने पूछा कि आपके पास क्या प्रमाण है कि यह बात गलत है? तो उस आदमी ने कहाः मैं खुद सिजर हूं। बर्ट्रेंड रसल ने उस आदमी से और बातचीत करनी उचित न समझी, उसे नमस्कार किया और कहाः माफ करिए, नये संस्करण में मैं सुधार कर लूंगा। वह आदमी प्रसन्न होकर चला गया। पीछे पता चला कि वह एक नाटक में सिजर का काम किया था। और तब से दिमाग उसका खराब हो गया। वह अपने को सिजर ही समझने लगा। और ठीक ही वह बर्ट्रेंड रसल को सुझाव देने आया था कि अपनी भूल सुधार लो। सिजर अभी जिंदा है।

यह आदमी पागल मालूम होता है। हम लोग किस भांति के लोग हैं। लेकिन एक पति अपनी पत्नी के सामने प्रेम का अभिनय करता है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं और धीरे-धीरे भूल जाता है कि यह अभिनय था। एक बेटा अपने बाप के सामने आदर का अभिनय करता है कि मैं तुम्हें आदर करता हूं और धीरे-धीरे भूल जाता है कि यह अभिनय था। एक मित्र-मित्र के सामने अभिनय करता है कि मैं प्राण दे दूंगा तुम्हारे लिए और भूल जाता है कि यह अच्छी बातचीत थी, कविता थी, यह जिंदगी नहीं थी, यह सच्चाई नहीं थी। और इस बात को याद रख लेता है कि मैं उन मित्रों में से हूं जो जान दे देगा।

लेकिन न तो हमारा प्रेम सच्चा है, न हमारी मित्रता सच्ची है, न हमारा आदर सच्चा है। अगर हमारा प्रेम सच्चा होता, हमारी मित्रता सच्ची होती, हमारा आदर सच्चा होता, तो यह सड़ी-गली और कुरूप दुनिया हम पैदा करते? जो हमने पैदा की। हर पति अपनी पत्नी को प्रेम कर रहा है, हर बाप अपने बेटे को प्रेम कर रहा है, हर मां अपने बच्चों को प्रेम कर रही है, तो सारी दुनिया में इतना प्रेम और इतनी रद्दी दुनिया पैदा हुई? इतने प्रेम से

इतनी रद्दी दुनिया पैदा हो सकती थी? इतनी कुरुप, इतनी भ्रमित ये दुनिया हमारे सब... अगर प्रेम सच्चा होता तो उससे पैदा हो सकती थी?

तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध हमने लड़े हैं। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध हमें लड़ने पड़ते हैं। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध किस बात की खबर देते हैं? हमारे भीतर प्रेम है या कि घृणा? हमारे भीतर आदर है या कि अपमान? हमारे भीतर मित्रता है या शत्रुता है? अगर कोई भी आदमी आंख खोल कर इस दुनिया को देखेगा, तो उसे यह शक पैदा हो जाना स्वाभाविक है कि प्रेम की बातें अभिनय होंगी, मित्रता की बातें कविताएं होंगी; अगर वे सच्चाईयां होतीं तो जिंदगी और होनी चाहिए थी, जैसी वह बिल्कुल नहीं है।

कौन इस दुनिया को बना रहा है? हम सारे लोग इस दुनिया को बना रहे हैं। कौन इस समाज के घटक हैं? हम सारे लोग। और हम सारे लोग तो बहुत प्रेम से भरे हुए लोग हैं। फिर इस दुनिया में यह अप्रेम और घृणा और हिंसा कहां से आ जाती है? हमारे अतिरिक्त कोई और रास्ता भी है इसके आ जाने का। निश्चित ही असलियत कुछ और होगी, अभिनय हमारा कुछ और है। बड़े व्यापक पैमाने पर दुनिया में जो प्रकट होता है, वह हमारी असलियत है। और अपने-अपने घर में बैठ कर हम जो बातें करते हैं, वह अभिनय है। जिसे हम कहते हैं कि मुझे तुमसे प्रेम है, क्या उससे सच में हमें प्रेम है? क्या हमने कभी भी उसका मंगल और कल्याण चाहा है? क्या उस प्रेम में भी हमारी ईर्ष्या और घृणा सम्मलित नहीं है। क्या जिसे हम प्रेम करते हैं उसकी गर्दन पर भी हमने फंदे नहीं डाल दिए हैं? क्या उसको भी हमने घर की दीवालों में बंद नहीं कर दिया है। क्या हमने उसके ऊपर सींखचे और ताले नहीं जड़ दिए हैं। जिसको हमने प्रेम किया है क्या उसको भी हमने अपना पजेशन, अपनी संपत्ति नहीं बना लिया है? क्या कोई व्यक्ति प्रेम करता है और प्रेम को संपत्ति बना सकता है? क्या कोई प्रेम करता है, और प्रेम करके किसी का मालिक बन सकता है? क्या कोई प्रेम करता है और किसी के लिए बंधन खड़े कर सकता है? क्या कोई प्रेम करता है और ईर्ष्या से भी भरा हुआ हो सकता है? प्रेम के लिए यह सब असंभव है। इसलिए प्रेम तो हमारा अभिनय है, सच्चाईयां हमारी बहुत दूसरी हैं।

मैंने सुना है, एक घर में एक मां और बेटी दोनों को ही रात में उठ कर चलने की बीमारी थी। एक रात मां उठी और अपने मकान के पीछे बगिया में चली गई। आधी रात होगी, उसके पीछे ही उसकी लड़की भी उठी और बगिया में चली गई। मां ने लड़की को देखते ही कहाः वह नींद में ही थी, लड़की को देखते ही उसका चित्त क्रोध और ईर्ष्या से भर गया। और उसने कहा कि इस दुष्ट के कारण ही मेरा सारा यौवन नष्ट हो गया, इसी ने मेरी सारी जवानी छीन ली, मन होता है इसकी गर्दन दबा दूं। और उस लड़की ने उस बूढ़ी को देखते ही कहाः वह भी नींद में थी, कि इस बूढ़ी औरत के कारण ही मेरा जीवन एक कष्ट और कारागृह बन गया है, मेरी हर खुशी में यह बाधा बन गई है, परमात्मा करे यह उठ जाए, तो मेरे रास्ते के सारे कांटे दूर हो जाएं। लेकिन ये बातें दोनों ने नींद में कहीं थीं। क्योंकि जाग कर तो सच्ची बातें कोई भी कहता नहीं है। तभी मुर्गे ने बांग दी और उन दोनों की नींद खुल गई। और उस लड़की ने जाग कर देखा अपनी मां को और कहाः मां इस सर्दी में तुम बाहर और शॉल भी भीतर छोड़ आईं, अगर सर्दी लग जाए तो? और उस मां ने कहाः बेटी तू इतनी जल्दी उठ आई, चल वापस सो जा, अभी तो दो घंटे हैं। फिर जल्दी उठ आती है इसलिए तो दिन भर थकान मालूम पड़ती है। वे एक-दूसरे के गले में हाथ डाल कर घर में वापस लौट गईं और सो गईं।

नींद में उन्होंने जो कहा था वह और जाग कर जो उन्होंने जो कहा वह, उन दोनों में तो जमीन-आसमान का फर्क है। लेकिन सच्चाई क्या है? जो जाग कर कहा वह या जो नींद में कहा वह? नींद में तो झूठ बोलने का कोई कारण ही न था, जागने में झूठ बोलने के कारण हैं, क्योंकि जागने में सब सोच-विचार आ गया है कि क्या कहना ठीक है, और क्या नहीं? और जागने में ख्याल आ गया कि कौन मां है और कौन बेटी? और जागने में

सारा शिष्टाचार है। और जागने में सारी बातें ख्याल में आ गईं और उन ख्याल में आई हुई बातों से जो पैदा हुआ, वह झूठा है, वह अभिनय है। नींद में तो सच्चाइयां खुल गई थीं!

आदमी की सच्चाइयां उसके सपनों में ज्यादा खुल जाती हैं बजाय उसके जागने के। और एक आदमी अगर नशा करके खड़ा हो जाए, तो ज्यादा सच्चाई से वही होता है जो वह है। वही गालियां बकने लगता है, वही आदमी जो भजन गा रहा था। नशा करके गालियां बकने लगता है। नशे में कोई ताकत हो सकती है कि भीतर गालियां पैदा कर दे? नहीं लेकिन भीतर गालियां भरी थीं, भजन ऊपर थे। और नशे ने सारा बोध छीन लिया, भीतर जो भरा था वह निकलना शुरू हो गया। दिन में हम जागे हैं, रात हम सो गए हैं। होश खो गया है सपने में जो सच्चाइयां थीं वे प्रकट होने लगीं।

आप खुद अपने भीतर अगर थोड़ी खोज-बीन करेंगे तो बहुत डर जाएंगे। कहीं मेरे भीतर यह जो सब जो छिपा है लोगों को पता न चल जाए, कहीं यह उघड़ न जाए, कहीं कोई इसमें झांक न लें। इसलिए जो हमारे भीतर छिपा है हम उसके ऊपर दीवाल पर दीवालें खड़ी करते चले जाते हैं ताकि उसका किसी को पता न लगे, ताकि वह छिपा रहे, ताकि कोई उसमें झांक न ले, हमारा निकटतम मित्र भी हमारा इतना निकट नहीं होता कि हम उसे अपने भीतर झांकने दें। और तब धीरे-धीरे डर से और भय से हम भी अपने भीतर झांकना बंद कर देते हैं। और फिर हम पूछते हैं, आत्म-ज्ञान कैसे हो? सत्य कैसे मिले? परमात्मा के दर्शन कैसे हों? जो अपने ही दर्शन करने को राजी नहीं है, वह और किस सत्य के दर्शन करने की आकांक्षा कर सकता है? या उसकी आकांक्षा में कितनी सच्चाई हो सकती है? कितनी उत्कंठा हो सकती है?

मनुष्य के समक्ष मनुष्य का मन जैसा है--क्रोध, हिंसा और ईर्ष्या जो कुछ भी है, उसे बहुत सरलता से वैसा ही जानना जरूरी है। सारे वस्त्र ओढ़े हुए उतार देने जरूरी हैं। नग्न चित्त के समक्ष खड़ा होना जरूरी है। यह तो पहली बात है कि हम अपने से बचना बंद कर दें। अगर किसी भी दिन हमें जीवन की गहराइयों में उतरना हो, और किसी भी दिन हमें जीवन के अर्थ और अभिप्राय को जानना हो और किसी भी दिन हमें जीवन में छिपे सौंदर्य और आनंद की अनुभूति करनी हो तो अपने आपसे पलायन बंद कर देना होगा, अपने आपसे भागना बंद कर देना होगा। और अपने वस्त्रों को उघाड़ कर देखना ही पड़ेगा चाहे यह कितना ही पीड़ादायी हो, चाहे यह कितना ही कष्टप्रद हो, और चाहे कितनी ही सांत्वना हमसे छिन जाए, और हमारा संतोष नष्ट हो जाए। लेकिन देखना ही होगा इस बात को, इसे बिना देखे कोई रास्ता सत्य तक न कभी गया है और न जा सकता है।

यह तो पहली बात है कि हम अपने से भागना बंद कर दें। और अपने से हम भाग रहे हैं, नये-नये रास्ते खोज रहे हैं, और ये अपने से भागना इतना ज्यादा तीव्र हो सकता है, यह अपने आपकी पीड़ा इतनी गहरी हो सकती है कि हम किसी तरह न केवल अपने से भागना चाहें, बल्कि पीड़ा से अपने को भूलना भी चाहें। भागने के बाद भूलने की सीमा आ जाती है। घबड़ा कर जो आदमी अपने से निरंतर भागता रहता है, आखिर में उसे पता चलता है मैं कितना ही भागूं, लौट-लौट कर कुछ चीजें दिखाई पड़ जाती हैं। बार-बार अपने से मिलना हो जाता है। आखिर कोई अपने से भाग कैसे सकता है? किसी और चीज से भागता तो भाग भी सकता था?

मैं अगर भाग कर जंगल चला जाऊं, आप सब तो पीछे छूट जाएंगे, लेकिन मैं, मैं अपने साथ ही वहां पहुंच जाऊंगा। मैं जहां भी भागूंगा, मैं अपने साथ रहूंगा, तो भागने की अतिश्यता एक दिन इस निष्कर्ष पर ले आती है कि भागने से काम नहीं चलेगा, भूलना जरूरी है। तब हजार तरह के नशे खोजने की बात शुरू हो जाती है। कोई आदमी शराब पीकर अपने को भूलना चाहता है, कोई आदमी संगीत में भूलना चाहता है, कोई आदमी सेक्स में अपने को भूल जाना चाहता है। कुछ भले लोग हैं, वह इस तरह के नशे करना पसंद नहीं करते, तो उन्होंने भले आदमियों के नशे ईजाद कर लिए हैं, कोई राम-राम जप कर अपने को भूल जाता है, कोई मंदिर में जाकर भजन-कीर्तन करता है, नाचता है और भूल जाना चाहता है। कोई गीता और कुरान और बाइबिल पढ़ता

है और उन्हीं में अपने को भूल जाना चाहता है। लेकिन नशे चाहे अच्छे हों, चाहें बुरे, उनका काम एक ही है कि किसी भांति हम अपने को भूल जाएं, वह जो हम हैं, उसकी हमें स्मृति न रह जाए। वह द्वार बंद हो जाए, जो हम हैं। बहुत राहत मिलती है। जैसे ही कोई अपने को भूलने में समर्थ होता है, बहुत राहत मिलती है।

यूरोप और अमरीका में वे नई-नई इजादें कर रहे हैं, नये ड्रग्स खोज रहे हैं--मेस्कलीन हैं, एल एस डी है, और कुछ है। बहुत पुराने दिन से यह खोज चल रही है, वेद के ऋ षियों से लेकर आज तक, सोमरस से लेकर एल एस डी तक वही खोज चल रही है कि अपने को किस तरह भूल जाएं? कोई नशा कर लें और अपने को भूल जाएं। भूल जाने में अच्छा लगता है क्योंकि अपने को जानने में बुरा लगता है। वह जो अपने को जानने की पीड़ा है, दंश है, द्वंद्व है, तकलीफ है कि मैं यह क्या हूं? उसे जितनी देर को हम भूल जाते हैं तो हम तो भगवान हो जाते हैं क्योंकि वह सारा अंधेरा भूल गया। सब ज्योति हो गई, वे सारे घाव भूल गए, सब स्वस्थ्य हो गया। वे सब पीड़ाएं भूल गईं, चिंताएं भूल गईं, सब शांत और संगीत हो गया, लेकिन कोई अपने को कितनी देर भूले रह सकता है, और भूले रहना क्या कोई क्रांति है या कि कोई परिवर्तन?

भूलना कोई मार्ग तो नहीं हो सकता। न भागना कोई मार्ग हो सकता है, न भूलना कोई मार्ग हो सकता है। भूलने से क्या हित है? सो जाने से कौन सी राहत है? सो जाने से वह चीज दबी रह जाएगी भीतर, दिखाई नहीं पड़ेगी, लेकिन कब तक सोए रहेंगे? क्या सोने से उसका अंत हो जाएगा जिससे हमने भागना चाहा था? क्या आत्म-विस्मरण से जीवन की चिंता से छुटकारा हो जाएगा? क्या आत्म-विस्मरण मुक्ति बन सकता है? नहीं, बिल्कुल नहीं, कभी भी नहीं, बल्कि जितनी देर आत्मविस्मरण में बीतता, उतना जीवन व्यर्थ हो जाता है, उतना अवसर खो जाता है, जिसमें हम अपने को जान लेते और शायद बदल लेते। उतना अवसर अपने हाथ से हम खो देते हैं। उतना अवसर हमारे हाथ से व्यर्थ रीत जाता है।

उतनी शक्ति और क्षमता जो हमने अपने को भुलाने में लगाई काश हम अपने को जगाने में लगाते, तो जिंदगी और हो सकती थी। जिंदगी कुछ और हो सकती थी। बात कुछ और हो सकती थी। लेकिन हमने अपने को भुलाने में लगाया है, एक आदमी के पैर में फोड़ा हो और वह नशा करके भूल जाए। एक आदमी के सिर में दर्द हो, और वह अफीम खाकर सो जाए। और एक आदमी की जिंदगी में चिंता हो, पीड़ा हो, परेशानी हो और वह भजन करता रहे और भूल जाए। क्या इससे कोई पीड़ा, इससे कोई दुख, इससे कोई बीमारी का अंत होता है? नहीं उसका तो कोई अंत कैसे होगा? उसका अंत तो उसके साक्षात से हो सकता है, उसके मुकाबले से हो सकता है, उसके निकट जानने से उसे पहचानने से हो सकता है, ज्ञान के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन की चिंता और दुख से कोई छुटकारा नहीं है। लेकिन ज्ञान से शायद हम भयभीत हैं, क्योंकि ज्ञान की पहली सीढ़ी अपने को जानना होगी। और अपने को जानने का अर्थ आत्मा को जानना नहीं है, अपने को जानने का अर्थ परमात्मा को जानना नहीं है, अपने को जानने का पहला और सीधा अर्थ अपने चित्त को, अपने मन को जानना है। मन शांत हो जाए, समाप्त हो जाए, मन विलीन हो जाए, तो जो जाना जाएगा वह है आत्मा। मन के रहते, मन की इस दौड़ और आकांक्षा में डूबे रहते, उससे कोई परिचय नहीं हो सकता। जैसे समुद्र में तूफान हो और सारी समुद्र की छाती लहरों से भरी हो, तो उन लहरों में डूबे समुद्र को, उस समुद्र की शांति को, उस समुद्र की अथाह गहराई को देखना और जानना असंभव है। हां हम हो जाएं लहरें तो समुद्र सामने आएगा, शांत और गहरा और अथाह। लेकिन लहरों के तूफान में तो उसका कोई दर्शन नहीं हो सकता। मन का तूफान है, विचार का तूफान है, चिंता का तूफान है, बहुत लहरें हैं। तो उन लहरों के नीचे छिपी आत्मा के सागर से कोई मिलन नहीं हो सकता।

इन लहरों को जानना ही होगा, इन लहरों को जान कर, इनके विलीन होने पर ही पीछे छिपे सागर की अनुभूति हो सकती है। तो पहला कदम बहुत नकारात्मक है, और वह यह कि अपने से भागना हम बंद करें।

लेकिन पहले तो यह समझ लें कि हम अपने से भाग रहे हैं; आमतौर से तो हम समझते हैंः मैं भाग कहां रहा हूं अपने से? लेकिन हम भाग रहे हैं। इस तथ्य को मेरे कहने से नहीं, अपने भीतर, अपनी जिंदगी में खोजने से ही देखा जा सकता है। सुबह से सांझ तक हम भाग रहे हैं, जो हम हैं न हम जानना चाहते हैं और न दूसरे को जानने देना चाहते हैं कि हम क्या हैं? और हम रोज-रोज नई तस्वीरें और रोज-रोज नये चित्र गढ़ लेते हैं, और नये कपड़े बना लेते हैं। और भरते जाते हैं कपड़ों से, डूबते जाते हैं, धीरे-धीरे खो जाते हैं, कपड़े ही रह जाते हैं। और हमारा कोई पता नहीं रह जाता कि हम कहां हैं? अगर हमारे कपड़े कोई छीन ले एकदम तो शायद हम पहचान भी न पाएं कि हम कौन हैं? हम क्या हैं? जो बाते हमने दूसरों को दिखाई है, अगर हमारी पोंछ दी जाएं, छीन ली जाएं, तो हम नग्न खड़े रह जाएं, और पहचानना मुश्किल हो जाएगा कि मैं कौन हूं?

मैंने सुना है, एक भिखारी औरत, एक संध्या एक मेले से भीख मांग कर वापस लौट रही थी। दिन भर थक गई थी, बूढ़ी औरत थी। दिन भर मेले की दौड़-धूप में थक गई थी, मांगने में एक-एक आदमी के सामने हाथ फैलाने में। चलते समय घर लौटते वक्त रास्ते में एक झाड़ के नीचे विश्राम करने को ठहरी और सो गई। उस मेले से और लोग भी उस रास्ते से निकल रहे थे, दो अभिनेता जो कि मेले में नाच-कूद कर लोगों को खुशी दिए थे और अपनी जेबें भर कर लौट रहे थे। दो हंसोड़ आदमी, वे भी उस रास्ते से निकले और उस बूढ़ी औरत को उन्होंने सोते देखा। उन्हें मजाक सूझी, उन्होंने उसके डिब्बे को उठा लिया जिसमें उसने दिन भर के पैसे इकट्ठे किए थे। उसकी टोकरी में जो सामान उसने मांगा था, वह भी निकाल लिया। और चलते वक्त आखिरी मजाक की जो कोई भी आदमी किसी दूसरे आदमी के साथ कर सकता है। चलते वक्त उस सोई, थकी, बूढ़ी औरत के कपड़े भी वे निकाल कर ले गए। वह थकी बूढ़ी औरत नग्न पड़ी रह गई। सब कुछ उसका ले गए थे, उसका भिक्षा का पात्र, उसकी मांगी हुई चीजें, उसके पैसे और उसके वस्त्र भी। यह बड़ा मजाक था। क्योंकि उसके कपड़े ले गए होते, उसके भिक्षा के सामान ले गए होते, तो कोई बात न थी, लेकिन उसके पहने हुए वस्त्र भी, कठिनाई हो गई, बूढ़ी की आधी रात के करीब नींद खुली। उसने हाथ फेरा तो पाया कि उसके वस्त्र नदारद हैं। वह बहुत हैरान हुई, उसे ख्याल आया कि मैं, मैं तो वस्त्र पहने हुए थी, फिर यह नग्न औरत कौन है? उसने अपने डिब्बे को देखा और डब्बा नदारद था। उसने कहा, मैं तो भिक्षा मांग कर लाई थी और वस्त्र? मेरा डब्बा भरा हुआ था, पैसों से, डब्बा कहां है, मेरी टोकरी कहां है? मेरी पोटली कहां हैं? कुछ भी न था, और तब वह खड़ी हुई उसने देखा कि उसके ऊपर कोई वस्त्र नहीं है, उसे बड़ी कठिनाई हो गईं, पहचानने में कि मैं कौन हूं?

उसे बड़ी हैरानी हुई कि मैं जो थी उसके पास तो वस्त्र थे, अब मैं कौन हूं? अब मैं कैसे पहचानूं कि मैं वही हूं या कोई और हूं? उसने सोचा कि चलुं अंधेरी रात है, घर चली चलूं, कोई रास्ते पर भी नहीं है, मेरा कुत्ता तो मुझे जरूर पहचान लेगा। उसके घर पर उसके पास एक कुत्ता था। बूढ़ी औरत भीख मांग कर आती थी तो कुत्ता दौड़ कर बाहर आ जाता था, और पूंछ हिलाने लगता था। सभी लोग कुत्ते पाल रखते हैं, जो पूंछ हिलाएं और पहचानें, नहीं तो कोई भी आदमी अपने को पहचानने में कठिनाई पाएगा। सम्राट भी कुत्ते पाल रखते हैं, भिखारी भी। क्योंकि वे पूंछ हिलाते हैं तो खुद को पहचानने में आसानी होती है कि मैं वही हूं। वह बूढ़ी गई अपने घर भागी हुई कि अब एक ही रास्ता है कि कुत्ता मुझे पहचान ले, तो निश्चित हो जाए कि मैं वही हूं, कोई मेरे कपड़े ले गया और मेरा सामान ले गया। और अगर कहीं कुत्ते ने भी नहीं पहचाना तो? वह डरी हुई थी, लेकिन एक ही उपाय था, वह घर गई और जैसा कि आप समझ सकते हैं, कुत्ता नहीं पहचान सका। क्योंकि नंगी बूढ़ी उसने कभी देखी नहीं थी। कुत्ता बजाय इसके कि पूंछ हिलाता, जोर से भौंकने लगा, एक अपरिचित और वह बूढ़ी घबड़ा गई। उसने कहा अब तो बड़ी कठिनाई हो गई, कुत्ता भी नहीं पहचानता है कि मैं कौन हूं?

मुझे पता नहीं कि इसके आगे क्या हुआ? उस बूढ़ी ने क्या रास्ता खोजा और कैसे वह अपने को पहचान पाई? लेकिन हम सबकी भी यही हालत हो जाए, अगर रात सोते में हमारे ओढ़े हुए सारे वस्त्र, हमारे व्यक्तित्व की सारी चादरे कोई खींच ले, और सुबह हम पाएं कि वह जो पद, वह जो नाम, वह जो प्रतिष्ठा, वह जो सब कुछ अखबारों ने हमारे लिए कहा था वह और पड़ोस के लोग जो हमसे कहते थे, वह सब छीन लिया गया है। और मेरे पास वह कुछ भी नहीं है। वह तख्तियां जो मैंने घर के आगे लगा रखी थीं, वह सर्टिफि केट जो मेरे पास थे, वह मेरे पास कुछ भी नहीं है। उस नग्न अवस्था में हम भी अपने को न पहचान पाएंगे। हम अपने को पहचानते ही नहीं हैं, दूसरे लोग हमें पहचानते हैं, इसी से हम अपने को पहचानने लगते हैं। कोई आपसे कहता है, आप बहुत भले आदमी हैं, और आपके भीतर एक ख्याल बन जाता है कि आप बहुत भले आदमी हैं। और कोई कहता है आप बहुत बुरे आदमी हैं, तो आपको चोट लगती है क्योंकि पहले आदमी ने जो भले आदमी की आपके भीतर धारणा भर दी थी, ये उस धारणा को छीन रहा है और आप फिर खाली हो जाएंगे। और भीतर फिर कोई धारणा न रह जाएगी। चौबीस घंटे हम अपने संबंध में एक इमेज, एक प्रतिमा खड़ी करने में लगे हुए हैं, और यह प्रतिमा हम खड़ी कर भी लेते हैं, कोई कुछ बन जाता है, कोई कुछ, लेकिन भीतर, भीतर वह जो हमारे छिपा है, उससे हम अपरिचित ही रह जाते हैं। और यह प्रतिमा रोज-रोज बदलनी पड़ती है, क्योंकि आस-पास के लोग रोज बदल जाते हैं।

नेपोलियन हार गया और सेंट हेलेना के द्वीप में उसको बंद कर दिया गया। महान विजेता एक कैदी की भांति बंद हो गया था। लेकिन दुश्मनों ने भलमनसाहत बरती थी। उसके हाथ में हथकड़ियां नहीं डालीं थीं। द्वीप पर चलने-फिरने की उसे आजादी थी। लेकिन द्वीप से भागने का कोई उपाय न था। सुबह ही सुबह वह घूमने निकला था। और दुश्मनों ने यह भी भलमनसाहत की थी कि उसके डाक्टर को भी उसके पास छोड़ दिया था। डाक्टर और वह दोनों घूमने निकले थे, सुबह-सुबह। एक पगडंडी पर उस ओर से छोटे से पहाड़ी रास्ते पर एक औरत अपने घास की गटरी लिए हुए आती थी। नेपोलियन का डाक्टर एकदम चिल्लाया और कहा, ओ घसियारिन! रास्ता छोड़, देखती नहीं है नेपोलियन आ रहा है। लेकिन नेपोलियन ने उस डाक्टर को कहाः मेरे मित्र वह प्रतिमा नष्ट हो गई, जो कल तक मेरी थी। तुम भूल में हो, अब कोई नेपोलियन नहीं है, मैं एक साधारण कैदी हूं। तुम वही प्रतिमा ढोए जा रहे हो, जो कल तक मेरी थी, वह टूट गई। मुझे रास्ते से हट जाना चाहिए और नेपोलियन रास्ते से हट गया। और उसने कहा वे दिन गए, जब मैं पहाड़ से कहता कि हट जाओ, और पहाड़ हट जाते थे। आज एक घास वाली औरत के लिए मुझे हट जाना चाहिए।

यह नेपोलियन बहुत समझदार आदमी रहा होगा। इस बात को समझ सका कि वह प्रतिमा मैंने बनाई थी इतने दिन तक वह टूट चुकी है। हम सब भी अपनी प्रतिमा बना रहे हैं। हो सकता है मौत तक न भी टूटे, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? अगर हम अपनी प्रतिमा को ही जानते हैं तो वह प्रतिमा झूठी है, हमारी बनाई हुई है। और उस प्रतिमा को ही अगर हमने मान लिया कि मैं हूं तो हम उसको कभी न जान सकेंगे जो वस्तुतः मैं हूं। जो प्रतिमा से उलझ गया वह आत्मा को कभी न जान सकेगा। इस प्रतिमा को इसके पहले की मौत तोड़ दे, या इसके पहले की कोई बड़ी हार नेपोलियन की प्रतिमा को तोड़ दे, जो आदमी समझता है वह खुद ही इस प्रतिमा को तोड़ देता है और भीतर प्रवेश करता है, वही आदमी साधक है, जो अपने हाथ से बनाई गई प्रतिमा को तोड़ कर भीतर प्रवेश करता है। वह प्रवेश कैसे हो सकता है? उसकी चर्चा मैं कल सुबह आपसे करूंगा, आज तो मुझे इतना ही कहना था कि हमने एक झूठी प्रतिमा अपने बाबत खड़ी कर ली है। एक फॉल्स इमेज हमने बना लिया है, कोई वजह है, कोई कारण है इसलिए हमने यह बना लिया है। आत्मज्ञान का जो अभाव है उसको भरने के लिए हमने एक झूठी प्रतिमा बना ली है और उसी को मान लिया है कि मैं हूं।

इस प्रतिमा के भीतर बिल्कुल उलटी हमारे चित्त की स्थिति है। हमने ऊपर फूल चिपका लिए हैं, भीतर दुर्गंध भरी है। हमने ऊपर रोशनी कर ली है, भीतर अंधेरा भरा है। और उस अंधेरे से हम डरते हैं कहीं उसका

हमें पता न चल जाए। क्योंकि उसका पता इस प्रतिमा की हत्या हो जाएगी। यह प्रतिमा टूट जाएगी अगर उसका हमें पता चल गया। लेकिन गुजरना ही पड़ता है इस रास्ते से, उस प्रतिमा को तोड़ने के, अन्यथा कोई फिर और गहरे और भीतर नहीं जा सकता। फिर वह अपने से बाहर ही घूमता हुआ रह जाता है। और हम सबने इतनी सुरक्षा कर ली है इस प्रतिमा में कि इसमें कोई दरवाजा भी नहीं छोड़ते हैं कि कहीं हम भीतर जा सकें, क्योंकि वह दरवाजे से कोई दूसरा भी भीतर जा सकता है। और कहीं वह भीतर हमारे जाकर देख ले, तो हमने सब तरह की सिक्योरिटी कर ली है। प्रतिमा को सब तरफ से बंद कर दिया है। अपने चारों तरफ खोल खड़ी कर ली है। और उसके भीतर हम बंद हो गए हैं।

एक सम्राट ने एक महल बनाया था। उस महल की दूर-दूर तक चर्चा हुई और दूर-दूर के सम्राट उसे देखने आए। महल बहुत अदभुत था। इतना सुरक्षित महल कभी भी नहीं बनाया गया था। पड़ोस का एक सम्राट उसे देखने आया। महल के मालिक ने एक-एक महल का कौना-कौना दिखलाया। सम्राट चकित हुआ, इतना सुरक्षित था वह कि चोर उसमें घुस न सकते थे, दुश्मन उसमें प्रवेश नहीं कर सकते थे। एक ही दरवाजा था उस महल में, ताकि कोई भीतर न आ सके। ताकि भीतर से कोई अनजान, अपरिचित बाहर न जा सके। द्वार पर सख्त पहरा था। लौटते वक्त पड़ोसी सम्राट ने प्रशंसा की और कहाः बहुत सुंदर महल बनाया, बहुत सुरक्षित, मैं भी कोशिश करुंगा एक ऐसे महल को बनाने की।

एक भिखारी द्वार पर खड़ा था वह यह सुन कर हंस पड़ा। मकान के मालिक ने पूछा क्यों हंस रहे हो? क्या बात है? कोई भूल है मेरे महल में? उस भिखारी ने कहाः एक भूल है, इसमें यह एक दरवाजा है, यह भूल है, यह दरवाजा भी नहीं होना चाहिए। इससे कोई और आ सके या न आ सके, मौत इस दरवाजे से भीतर आ जाएगी।

और तुम असुरक्षित हो, भीतर बंद हो जाओ और यह दरवाजा भी बंद कर लो, तुम पूरी तरह सुरक्षित हो जाओगे। कब्र में ही आदमी पूरी तरह सुरक्षित हो सकता है। इसलिए उलटा भी सच है, जो आदमी पूरी तरह सुरक्षित हो जाता है वह कब्र में बंद हो जाता है। और हम सबने अपनी-अपनी कब्र बना ली हैं। अपनी-अपनी प्रतिमाओं में, अपने-अपने इस झूठे रूप में हमने अपनी-अपनी कब्र बना ली हैं, उसके भीतर हम सुरक्षित हो गए हैं।

यह सुरक्षा मौत है। और इस मौत से बेचैनी और घबड़ाहट पैदा होती है। इस सुरक्षा से बाहर निकलने का मन होता है। स्वतंत्रता की आकांक्षा होती है, चिंता होती है, अशांति पैदा होती है तब हम पूछते हैं कि हम शांत कैसे हो जाएं? हम मुक्त कैसे हो जाएं? अमुक्ति हमने बना ली है, बंधन हमने खड़े कर लिए, दीवालें हमने बना लीं, कब्र हमने खड़ी कर ली हैं और हम पूछ रहे हैं सारी दुनिया में कि हम मुक्त कैसे हो जाएं? कौन करेगा मुक्त आपको? कोई तीर्थंकर करेगा, कोई अवतार करेगा, कोई बुद्ध करेंगे, कोई गुरु करेगा, कोई किसी को मुक्त नहीं कर सकता? आप तो अपनी दीवालें खड़ी कर रहे हैं, और चिल्लाते हैं कि हमें मुक्त होना है। कृपा करें, पहचानें आप अपनी अमुक्ति खुद हैं। और जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाएगा कि आपकी सुरक्षा ही आपका बंधन और कारागृह बन गई है, अपनी ही सुरक्षा में खड़ी की गई अपनी ही प्रतिमा हमारी मृत्यु बन गई है, उसी दिन इस प्रतिमा को तोड़ देना क्षण भर का काम होगा। आप इसको बनाते हैं इसलिए यह है। जिस दिन आप नहीं बनाते हैं उसी दिन यह विलीन हो जाती है। इसकी अपनी कोई सामर्थ्य और शक्ति नहीं है।

अमुक्ति मनुष्य का अपना सृजन है, और जिस दिन वह इसका सृजन बंद कर देता है, उसी क्षण मुक्त हो जाता है। और जो मुक्त है उसके लिए न कोई दुख है, न कोई पीड़ा है उसके लिए शाश्वत आनंद के, अमृत के द्वार खुल जाते हैं। और उस आनंद में वह जिसे पहचानता है, वही परमात्मा है, तब सब तरफ परमात्मा ही शेष रह जाता है। जब तक हम अपने कारागृह में बंद हैं तब तक हमारे भीतर भी परमात्मा नहीं है और जिस दिन हम अपने कारागृह को तोड़ कर मुक्त हो जाते हैं, उसी दिन सब तरफ भीतर और बाहर वही है, केवल वही है, केवल परमात्मा ही है। उसे जो जान लेता है वह धन्य है, वह कृतार्थ हो जाता है। जो उससे अपरिचित रह जाता है,

उसका जीवन एक दुख की कथा है, उसका जीवन एक लंबी मृत्यु है, उसका जीवन एक अंधकारपूर्ण रात्रि है, उसके जीवन में जीवन जैसा कुछ भी नहीं है। कैसे इस बंधन से जो हमारा ही निर्मित है छुटकारा हो सकता है, उसकी बात कल सुबह मैं आपसे करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

शून्य का संगीत

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहूंगा।

एक रात एक पहाड़ी सराय में मुझे ठहरने का मौका मिला था। उस रात एक बड़ी अजीब घटना घट गई थी। वह घटना रोज ही याद आ जाती है, क्योंकि रोज ही उस घटना से मिलते-जुलते लोगों के दर्शन हो जाते हैं। उस रात उस पहाड़ी सराय में जाते ही पहाड़ी की पूरी घाटी में एक बड़ी मार्मिक आवाज सुनाई पड़ी थी। कोई बहुत ही दर्द भरे स्वरों में कुछ पुकार रहा था। लेकिन निकट जाकर मालूम पड़ा कि वह कोई आदमी न था, वह सराय के मालिक का तोता था। वह तोता अपने सींखचों में बंद था, अपने पिंजड़े में, और जोर से स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! चिल्ला रहा था। उसकी आवाज में बड़ा दर्द था, जैसे वह हृदय से आ रही हो। जैसे उसके प्राण स्वतंत्रता के लिए प्यासे हों, और उस पिंजरे में बंद उसकी आत्मा जैसे छटपटाती हो मुक्त हो जाने को। उस तोते की उस आवाज में मुझे दिखाई पड़ा जैसे हर आदमी के भीतर कोई बंद है, पिंजरे में, और मुक्ति के लिए प्यासा है और चिल्ला रहा है। उस तोते से बड़ी सहानुभूति मालूम हुई, लेकिन सुबह ही मुझे पता चला कि बड़ी गलती हो गई। वह तोता चिल्लाता रहा। मालिक सराय का सो गया, और सराय के दूसरे मेहमान भी सो गए, तो मैं उठा, उस तोते के पिंजरे को खोला और उस तोते को मुक्त करना चाहा। मैं उस तोते को बाहर खींचता था और तोता भीतर सींखचों को पकड़ता था और चिल्लाता था, स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! मैंने बामुश्किल उस तोते को खींच कर पिंजरे के बाहर किया, इस पिंजरे से खींचने में उसने मेरे हाथ पर भी काट लिया, हाथ पर चोट भी की। उसे पिंजरे से बाहर निकाल कर मैं निश्चिंत हो गया। और मुझे लगा कि चलो एक आत्मा मुक्त हुई। मैं निश्चिंत जाकर सो गया, लेकिन सुबह पांच बजे जब मेरी नींद खुली तो मैंने देखा, तोता अपने पिंजरे में वापस बैठा है और चिल्ला रहा है--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!

तब मुझे बड़ी हैरानी हुई। तब मेरी समझ में आया कि यह स्वतंत्रता की प्यास तोते के हृदय से नहीं उठ रही है, यह सिखाई गई प्यास है। यह आवाज उसके मालिक ने सिखाई है, उसी मालिक ने जिसने उसे पिंजरे में बंद किया हुआ है। और यह तोता पिंजरे को भी पकड़े हुए है, छोड़ना भी नहीं चाहता, और स्वतंत्रता की आवाज भी दिए चला जाता है। फिर वह बात भूल जानी चाहिए थी, वह बात बहुत दिन हो गई बीते हुए। लेकिन रोज मुझे ऐसे आदमी मिल जाते हैं, जो चिल्लाते हैंः स्वतंत्रता चाहिए, मुक्ति चाहिए, परमात्मा चाहिए। और मैं उनको गौर से देखता हूं, तो पाता हूं, वे अपने पिजरों को पकड़े हुए हैं, और अगर उनको निकालने की कोशिश करो, तो तोते की भांति वे भी हमला करते हैं, वे नाराज होते हैं। और अगर उन्हें कोई जबरदस्ती निकाल कर बाहर भी कर दे, तो बाहर वे हो भी नहीं पाते, थोड़ी देर में फिर भीतर दिखाई पड़ते हैं।

वे लोग जो स्वतंत्र होना चाहते हैं, वे लोग ही अपने हाथ से अपने पिंजरे बनाए हुए हैं, अपने हाथ से अपनी जंजीरें निर्माण कर रहे हैं। वे लोग जो मुक्ति के आकाश में उड़ना चाहते हैं, उन्हें मैं आदमियों के द्वारा बनाए गए मंदिरों में बंद देखता हूं। वे लोग जो मोक्ष की कामना करते हैं, आदमी के द्वारा निर्मित किताबों में उन्हें बंद देखता हूं। वे लोग जो स्वत्रंतता की प्यास की गुहार मचाते हैं, उनको मैं देखता हूं कि हजार-हजार परतंत्रताओं में उन्होंने खुद अपने को बांध लिया है। तब बहुत हैरानी होती है, और उस तोते की मुझे याद आ जाती है। तोता तो दया करने योग्य था, लेकिन इन आदमियों के लिए क्या किया जाए? तोता तो फिर भी तोता था, और सिखाई हुई बातें दोहरा रहा था, लेकिन क्या आदमी भी सिखाई हुई बातें तो नहीं दोहरा रहा है? क्या

यह ईश्वर की प्यास और सत्य की खोज और यह मुक्ति की कामना, ये भी कहीं सिखाए हुए पाठ तो नहीं हैं? क्योंकि अगर ये सिखाए हुए पाठ न होते तो यह अदभुत घटना कैसे घट सकती थी कि जो आदमी मुक्त होना चाहता है वही अपने हाथ से अपनी जंजीरें निर्मित करता हो? एक तरफ चिल्लाता हो कि मुझे मुक्ति का आकाश चाहिए, और दूसरी तरफ पिंजरे बनाता हो और कारागृह बनाता हो। ये एक ही आदमी के द्वारा कैसे संभव हो सकता था?

लेकिन यह आश्चर्यजनक घटना हम सबके जीवन में घट रही है। शायद कारण यह हो सकता है कि जिन बातों को हम स्वतंत्रता के लिए मार्ग समझ रहे हैं, वे ही बातें पिंजरा बन जाती हों और हमें इसका पता न हो। शायद जिन बातों को हम मुक्ति की सीढ़ी समझते हों, वही हमें अमुक्ति में ले जाने का द्वार बन जाता हो और हमें इसका बोध न हो। इस संबंध में ही थोड़ी सी आज मुझे बात करनी है। शायद उस तरफ कुछ इशारे करने से हमें अपनी परतंत्रताएं और कारागृह दिखाई पड़ जाएं। और बड़े रहस्य की बात यह है कि उनका दिखाई पड़ जाना ही उनसे मुक्त हो जाना हो जाता है। उनके लिए कुछ और नहीं करना पड़ता है। इसके पहले कि मैं इस चर्चा के भीतर चलूं, एक और छोटी कहानी कहूंगा।

एक और दूसरी सराय में ले चलना चाहता हूं। अभी एक पहाड़ की सराय में हम गए थे, अब एक मरुस्थल की सराय में ले चलने का मेरा इरादा है। वहां भी एक रात एक बड़ी अजीब घटना घट गई। मरुस्थल के अत्यंत निर्जन स्थान पर वह सराय थी। काफिले आकर ठहरते और आगे बढ़ जाते। उस रात भी एक बड़ा काफिला वहां आकर ठहरा। उस काफिले के मालिकों ने अपने ऊंटों पर से सामान निकाला है और अपने ऊंट बांधे, लेकिन अंत में उन्हें पता चला कि उनके पास सौ ऊंट थे, लेकिन एक खूंटी किसी ऊंट की रास्ते में गिर गई। निन्यानबे ऊंट बंध गए थे, लेकिन एक ऊंट अनबंधा रह गया था। अंधेरी रात में उस निर्जन रास्ते पर उसे बिना बंधा नहीं छोड़ा जा सकता था, उसे बांधना जरूरी था। मालिकों ने जाकर सराय के बूढ़े को पूछा कि क्या एक रस्सी और एक खूंटी मिल सकेगी? एक ऊंट हमारा अनबंधा रह गया है, और अंधेरी रात में अनबंधा ऊंट छोड़ना ठीक नहीं है। उस बूढ़े सराय के रखवाले ने कहाः रस्सी और खूंटी तो यहां नहीं हैं, लेकिन जाओ गड़ा दो खूंटी और बांध दो रस्सी और ऊंट को बांध दो। वे हंसे और उन्होंने कहा, अगर हमारे पास खूंटी और रस्सी होती तो हम तुमसे पूछने न आते। वही तो नहीं है, ऊंट को कैसे बांधे? तो उस बूढ़े ने कहाः झूठी खूंटी गड़ा दो और झूठी रस्सियां बांध दो। ऊंट को पता भर चल जाए अंधेरे में कि खूंटी गाड़ी गई और रस्सी बांधी गई, ऊंट सो जाएगा।

उनको विश्वास न पड़ा, उन्होंने कहा, हमें विश्वास नहीं पड़ता। वह बूढ़ा हंसने लगा, उसने कहा, तुम पागल हो, ऊंट तो ऊंट आदमी भी झूठी खूंटियों में बांध दिए जा सकते हैं। जाओ कोशिश करो। मजबूरी थी, खूंटी थी नहीं, और उस बूढ़े की बात को ही प्रयोग करके देख लेना लाजमी था। काफिले का मालिक गया और एक झूठी खूंटी उसने अपनी जिंदगी में पहली दफा गाड़ी। बड़ी हैरानी से गाड़ रहा था, खूंटी थी नहीं, लेकिन वैसे ही आवाज कर रहा था जैसे कि खूंटी होती और गाड़ी जाती। ऊंट खूंटी गाड़ने की आवाज सुन कर बैठ गया, मालिक हैरान हुआ, ऊंट राजी हो रहा है। उसने एक रस्सी बांधी जो नहीं थी, और ऊंट के गले पर हाथ फेरा, जैसे कि रस्सी बांधते वक्त हमेशा फेरता रहा था। ऊंट बंध गया, ऊंट सो गया। मालिक भी अपनी जगह जाकर सो गया, और हैरान हुआ कि बूढ़ा बड़ा अनुभवी है, ऊंटों के संबंध में उसका बड़ा ज्ञान है।

सुबह जल्दी ही काफिला चलने को तैयार होने लगा, निन्यानबे ऊंटों की खूंटियों उखाड़ ली गईं और रस्सियां निकाल दी हैं, लेकिन सौवें ऊंट पर तो कोई खूंटी थी, न कोई रस्सी थी। निकाला भी क्या जाता। उसे जबरदस्ती धक्के देकर उठाने की कोशिश की जाती रही, लेकिन ऊंट ने उठने से इनकार कर दिया। वह बंधा हुआ है। वह उठता भी कैसे? काफिले का मालिक घबड़ा गया कि क्या इस बूढ़े पहरेदार ने कोई जादू कर दिया है।

शक तो रात में भी हुआ था, वह गया उस बूढ़े के पास, कि तुमने क्या कर दिया है ऊंट को? ऊंट उठता नहीं। उस बूढ़े ने कहाः पागलो, पहले उसकी खूंटी निकालो और रस्सी खोलो। तो उस बूढ़े ने कहाः लेकिन खूंटी हो, रस्सी हो, तब हम खोलें? वह बूढ़ा पहरेदार बोलाः जिस भांति रात खूंटी गाड़ी थी, उसी भांति निकालनी पड़ेगी। ऊंट के लिए खूंटी गड़ गई है और ऊंट के लिए रस्सी बंध गई है।

मजबूरी में उस खूंटी को निकालना पड़ा, जो नहीं थी, और उस रस्सी को खोलना पड़ा, जिसका कोई अस्तित्व न था। रस्सी खोलते ही, खूंटी उखाड़ते ही, ऊंट उठ कर खड़ा हो गया।

उस बूढ़े ने हंस कर कहाः खूंटियों की जरूरत बहुत ज्यादा नहीं है, झूठी खूंटियां भी काम दे देती हैं। और स्मरण रहे, सच्ची खूंटियां उतने जोर से कभी नहीं बांधती जितनी झूठी खूंटियां बांध देती हैं। क्यों? क्योंकि उनको निकालना भी मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वे होती ही नहीं।

आदमी के ऊपर भी जो बंधन हैं वे सौवें ऊंट की भांति हैं। वे सच में अगर हों, तो भी कोई बात थी। उनका होना एकदम काल्पनिक है, एकदम मन का है। उन्हें देख लेना ही उनसे मुक्त हो जाने के लिए काफी है।

तो उस तरफ ही ये थोड़ी सी बातें आज मुझे आपसे कहनी हैं, ताकि वे बंधन दिखाई पड़ सकें जो कि वस्तुतः नहीं हैं, लेकिन फिर भी हमें बांधे हुए हैं। ताकि वे सींखचें दिखाई पड़ सकें और पिंजरे और कारागृह जिनमें हमने अपनी आत्मा को खुद ही कैद किया हुआ है, और हम चिल्ला रहे हैं कि स्वतंत्रता चाहिए। और गुरुओं को खोज रहे हैं, और सत्संग कर रहे हैं, और उपवास कर रहे हैं, और सिर के बल खड़े हो रहे हैं, और न मालूम क्या-क्या उपाय कर रहे हैं। उन बंधनों से छूटने का जो हमारे ही द्वारा निर्मित हैं और एकदम काल्पनिक हैं। कौन से वे बंधन हैं जो चित्त को एक गुलामी में परिवर्तित कर देते हैं और चित्त को एक दुख और चिंता में बदल देते हैं? और चित्त एक अंधेरी रात की भांति हो जाता है जहां सिवाय टकराने, चोट खाने और गड्ढों में गिर जाने के अतिरिक्त कोई यात्रा नहीं रह जाती। कौन से वे बंधन हैं और कैसे उनसे हम जाग सकते हैं? और कैसे जीवन की परिपूर्णता को, जीवन की प्रफुल्लता को, जीवन के आनंद को, और सत्य को अनुभव कर सकते हैं?

तीन सूत्रों की इस दिशा में मैं बात करना चाहता हूं।

पहला सूत्रः मनुष्य को, मनुष्य के चित्त को अंधकार में, अज्ञान में, भूले हुए रास्तों पर भटकने के लिए जिस चीज ने बहुत बड़ा आधार रखा है, वह है हमारा अंधविश्वास, हमारा अंधापन, हमारी श्रद्धा, यह शब्द बहुत आदृत हो गया है हजारों साल की पूजा के कारण। लेकिन इससे जहरीला, इससे ज्यादा विषाक्त और कोई शब्द नहीं है। श्रद्धा ने, विश्वास ने, बिलीफ ने आदमी के जीवन को एक अंधकारपूर्ण कारागृह बना दिया है। क्योंकि उस शब्द का बहुत बुनियादी अर्थ आदमी को अंधा होने के लिए राजी करता है। और जो आदमी अंधा हो जाता है फिर वह कैसी भी खूंटियों पर विश्वास कर सकता है। क्योंकि अगर वह आंख खोले तो दिखाई पड़ सकता था कि खूंटियां झूठी थीं, वह ऊंट उस रात धोखे में आ गया, शायद दिन होता तो धोखे में न आता। रात अंधेरी थी, झूठी खूंटी गाड़ी जा रही थी, ऊंट को दिखाई नहीं पड़ रहा था। आदमी की जिंदगी में रात पैदा करने की तरकीब ईजाद कर ली गई है। आदमी की आंख बंद कर दी जाए तो रात हो जाती है। फिर उस अंधेरी रात में उस बंद आखों में कोई भी बंधन खड़े किए जा सकते हैं।

विश्वासों ने मनुष्य की आंखों पर पट्टियां बांध दी हैं। विश्वास का अर्थ है कि हम उन बातों को स्वीकार कर लेते हैं जिन्हें जानते नहीं। जिन्हें हमारे प्राणों ने अनुभव नहीं किया। जिन्हें हमारे जीवन ने स्पर्श नहीं किया। हम उन शब्दों को और सिद्धांतों को पकड़ लेते हैं, इस भांति जैसे कि हम उन्हें जानते हों और फिर यही रुकावट बन जाती है, खोज का यही अंत हो जाता है।

एक गांव में एक बहुत बड़ा तार्किक, एक बहुत बड़ा विचारक था। वह एक दिन सुबह गांव के तेली के पास तेल खरीदने गया था। उसने देखा कि तेली अपनी दुकान पर बैठा हुआ है और दुकान के पीछे ही तेली का

कोल्हू चल रहा है, बैल चल रहा है, चक्कर काट रहा है और तेल पेल रहा है। कोई उसे चला नहीं रहा था, तो उस विचारक ने उस तेली को पूछा, बैल को कोई चला नहीं रहा है लेकिन बैल चलता जा रहा है, बात क्या है? उस तेली ने कहाः देखते नहीं, बैल की आंखें बंद हैं। आंख हैं बंद बैल को यह पता भी नहीं है कि कोई नहीं चला रहा। उस विचारक ने पूछाः लेकिन अगर वह खड़ा हो जाए तब तो उसे पता चल जाएगा कि पीछे कोई नहीं है। उस तेली ने कहाः जरा गौर से देखें, बैल के गले में मैंने घंटी बांध रखी है, जब तक घंटी बजती रहती है, मैं समझता हूं कि बैल चल रहा है, और जब घंटी बंद हो जाती है मैं उठ कर बैल को फिर से पीछे से चला देता हूं, तो बैल को यह ख्याल बना रहता है कि मैं हमेशा उसके पीछे हूं। इसलिए वह खड़े होने की हिम्मत नहीं कर रहा।

उस विचारक ने थोड़ा सोचा और उसने कहाः यह भी तो हो सकता है कि बैल खड़ा हो जाए और सिर को हिलाता रहे ताकि घंटी बजे और आपको धोखा पैदा हो जाए? उस तेली ने कहाः माफ करो और जल्दी से दुकान से जाओ, कहीं बैल तुम्हारी बातें न सुन ले। यह तुम्हारी बात बड़ी खतरनाक हो सकती है, मेरा सारा धंधा ही चौपट हो सकता है।

आदमी की आंख पर भी कुछ धंधे करने वाले लोगों ने पट्टियां बांध दी हैं। और वे बड़े डरते हैं कि विचार की कोई बात इन आंखें बंद आदमियों के कानों में न पड़ जाएं, नहीं तो यह सारा धंधा चौपट हो सकता है। जो धर्म के नाम पर सारी जमीन को एक जहरीले नाग की तरह घेरे हुए हैं, आदमी के आंख पर पट्टियां बांध दी गई हैं, और विचार की कोई खबर न पहुंच पाए उसके पास, इसलिए हजारों सालों से यह समझाया जा रहा है कि विश्वास करना, विचार नहीं। विचार भटका देगा, विश्वास ही पार ले जाने वाली नाव है। जब कि अंधापन कब किसको पार ले जा सकता है? फिर यह अंधापन किसी भी प्रकार का हो सकता है। आस्तिक का हो सकता है, नास्तिक का हो सकता है। अगर आस्तिक घर में पैदा हुए है, तो यह आस्तिक का होगा अंधापन कि बचपन से यह विश्वास मन में डालना शुरू कर दिया जाएगाः ईश्वर है, मोक्ष है, नरक है, स्वर्ग है। और यह भी बात सिखाई जाएगीः कभी संदेह मत करना। संदेह करने वाला आदमी भटक जाता है। जब कि सच्चाई यह है कि जो संदेह करता है वही किसी दिन सत्य पर पहुंच पाता है। जो संदेह नहीं करता उसके सत्य तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं है। लेकिन विश्वास करने वाला सिखाता है, संदेह मत करना, डाउट मत करना, विश्वास करना; जरा भी संदेह मत लाना, बस विश्वास करना। यह कितनी नासमझी की बात है कोई आदमी कितना ही विश्वास करे, क्या विश्वास करने से उसके भीतर के संदेह का अंत हो सकता है?

जबरदस्ती लाया गया विश्वास क्या भीतर संदेह को समाप्त कर सकता है? संदेह भीतर मौजूद रहेगा। लाख विश्वास को हम ऊपर से ओढ़ते चले जाएं, लेकिन भीतर जब तक चेतना जागी हुई है वह कहेगी, मुझे यह पता नहीं, यह सही भी हो सकता है, यह गलत भी हो सकता है। इस संदेह को कुचलते जाओ। विश्वास की शिक्षा है संदेह को कुचलो, इसके प्राण ले लो, इसकी गर्दन दबा दो, इसकी आवाज बाहर मत आने दो और तुम विश्वास को ओढ़ते चले जाओ। ऐसा आदमी अगर अपने भीतर के संदेह की हत्या करने में समर्थ हो गया है, तो वह समझ ले कि उसने संदेह की नहीं अपनी ही आत्महत्या कर ली, क्योंकि तब उसका अंधापन स्थायी हो गया, जिसका इलाज नहीं हो सकेगा।

लेकिन कोई आदमी कभी भी अपने भीतर के संदेह की पूरी हत्या करने में कभी समर्थ नहीं हो पाता है। ऊपर से विश्वास थोप लेता है, भीतर संदेह बना रह जाता है। और इसी संदेह को दबाने के लिए और विश्वास को मजबूत करने की उसे हजार कोशिशें करनी पड़ती हैं। हजार उपाय करने पड़ते हैं ताकि भीतर का संदेह कहीं फिर से न जाग जाए? सारे धर्म यही करते रहे हैं, जब कि स्थिति सत्य के खोजी की बिल्कुल उलटी होगी। होगी यह कि वह अपने संदेहों को पूरी तरह विकसित करे, ठीक-ठीक विकसित करे, सम्यक संदेह, राइट डाउट ही यात्रा का प्राथमिक बिंदु है, वह ठीक से संदेह करे, संदेह के विज्ञान को समझे, संदेह की पूरी ताकत को समझे

और पूरे प्राणों से पूरे प्राणपन से जिज्ञासा करे, पूछे, शक करे, और अगर वह ठीक से संदेह करता चला जाए और पूरी तरह से, और इस संदेह में कहीं भी समझौता न करे, तो एक दिन संदेह की यह खोज ही उसे उन रास्तों पर पहुंचा देगी, यह संदेह की निरंतर खोज ही उन्हें उन तथ्यों पर पहुंचा देगी, जिन पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

संदेह की खोज ही असंदिग्ध तथ्यों पर ले जाने वाला मार्ग है, और तब, तब भीतर कोई संदेह नहीं रह जाता, और एक सत्य की ज्योति सारे प्राणों में व्याप्त हो जाती है। दो शब्दों में कहना चाहें, तो मैं ऐसा कहूंगा जो आदमी विश्वास से शुरू करता है उसकी मौत संदेह को लेकर होती है। और जो आदमी संदेह से शुरू करता है, वह अपने जीवन में उस जगह पहुंच जाता है जहां संदेह की कोई जगह नहीं रह जाती।

संदेह से यात्रा करने वाला ही ठीक-ठीक सत्य तक पहुंच पाता है; विश्वास से यात्रा करने वाला तो अंधेरे में भटक जाता है। क्योंकि उसने आंख तो पहले ही बंद कर ली, दर्शन की क्षमता तो उसने पहले ही खो दी, खोज का आग्रह तो उसने पहले ही समाप्त कर दिया; अब तो वह एक मृत लाश की भांति है, एक मुर्दा आदमी की भांति उससे क्या खोज हो सकेगी?

पहला बंधन देखने जैसा है मनुष्य के ऊपर और वह विश्वास का है। आस्तिक भी विश्वास करता है और नास्तिक भी। नास्तिक विश्वास कर लेता है, ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, मोक्ष नहीं है; उसका विश्वास नकारात्मक है। आस्तिक का विधायक है, लेकिन दोनों के विश्वास एक हैं और दोनों अंधे हैं। किसी को यह हक नहीं है कहने का कि ईश्वर नहीं है, जब तक कि वह जान न ले। किसी को यह हक नहीं है सोचने का और मान लेने का कि ईश्वर है, जब तक कि वह पहचान न ले। इसलिए ठीक-ठीक धार्मिक आदमी वह है, जो "हां" और "न" दोनों को अस्वीकार कर देता है और खोज को अंगीकार करता है। जो यह कहता है कि मुझे ज्ञात नहीं है लेकिन मैं जानना चाहता हूं। जो यह नहीं कहता कि मुझे मालूम है कि ईश्वर है, जो यह भी नहीं कहता कि मुझे मालूम है कि ईश्वर नहीं है। ऐसा जो आदमी इस तरह के आग्रहपूर्ण अंधता में पड़ जाता है, उसकी तो खोज वहीं बंद हो गई, समाप्त हो गई। खोज करने वाला चित्त, इंक्वायरी करने वाला चित्त तो खुला होगा, मुक्त होगा, वह कहेगा, मैं नहीं जानता हूं, लेकिन जानना चाहता हूं। मुझे ज्ञात नहीं है, लेकिन मेरे प्राण जानने को आतुर हैं, सत्य मुझे अज्ञात है, इसलिए मैं कैसे कहूं कि क्या है और क्या नहीं है। इतना ही कह सकता हूं निश्चय से अभी कि मैं अज्ञान में हूं।

धार्मिक व्यक्ति की पहली पहचान है कि वह न आस्तिक होगा, न नास्तिक होगा। न वह हिंदू होगा, न मुसलमान होगा। धार्मिक आदमी अज्ञात के प्रति आतुर होगा, जिज्ञासु होगा, पिपासु होगा, और अपने अज्ञान के प्रति सचेष्ट होगा। ये जो लोग विश्वास को पकड़ लेते हैं ये अपने अज्ञान को भूल जाते हैं और विश्वास के द्वारा झूठे ज्ञान को पैदा कर लेते हैं और इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि मैं जानता हूं। आस्तिकता और नास्तिकता की बकवास ने सारी दुनिया में यह भ्रम पैदा कर दिया है कि हम जानते हैं, मैं जानता हूं; जब कि हम कुछ भी नहीं जानते। अज्ञान हमारा बहुत गहरा है। लेकिन विश्वास के द्वारा थोथे ज्ञान को हम अपना बना लेते हैं और जोर-जोर से चिल्लाने लगते हैं कि मैं जानता हूं, न केवल चिल्लाते हैं बल्कि अजीब पागल लोग हैं हम, इस थोथे ज्ञान के ऊपर एक दूसरे की हत्या भी कर सकते हैं। मंदिरों-मस्जिदों में आग भी लगा सकते हैं, मुल्क के मुल्क को तबाह भी कर सकते हैं। क्योंकि हमारा ज्ञान दूसरे के ज्ञान से सही है इसलिए, जब कि हमारा ज्ञान भी वैसा ही अंधकार पूर्ण है जैसा दूसरे का। और अंधेरे में हम जिन बातों पर विवाद कर रहे हैं वे दोनों ही बातें एक जैसी हैं। अंधेरे में किए गए अनुमान हैं, अंधेरे में किए गए अनुमान और विश्वास खेलने के लिए तो अच्छे हो सकते हैं जिन लोगों को बैठ कर बुद्धिमत्ता की शतरंज खेलनी हो, उनके लिए तो ठीक हो सकते हैं, जिनको अनुमान करके

कल्पनाओं के आकाश में उड़ना हो, उनके लिए तो ठीक हो सकते हैं, लेकिन जो लोग सचमुच जीवन की खोज में निकले हैं, उनके लिए नहीं।

मैंने सुना है, एक स्कूल में एक इंस्पेक्टर का आगमन हुआ था। उसके आने के पहले ही खबर पहुंच गई थी उसके आने की। वह आदमी विशिष्ट था, खबर पहुंच जानी जरूरी थी। जिन-जिन स्कूलों में वह निरीक्षण को गया था, उन सबके रिकॉर्ड खराब कर आया था। क्योंकि उसने जो प्रश्न पूछे थे उनका उत्तर बच्चे तो क्या साधु-संत और महात्मा और पहुंचे हुए सर्वज्ञ भी नहीं दे सकते थे। प्रश्न बेहूदे थे और पागलपन से भरे हुए थे। उस स्कूल में आया तो घबड़ाहट फैल गई थी। स्कूल का रिकॉर्ड खराब होना निश्चित था। वह इंस्पेक्टर पागल हो चुका था, उसके पागलपन की खबर सबसे पहले इसी से चल गई थी कि वह तीस ही दिन इंस्पेक्शन करने लगा था। कोई समझदार इंस्पेक्टर कभी इंस्पेक्शन करने जाता है? उसके पागलपन की इसी से खबर फैल गई थी कि यह पागल हो गया है, तीस ही दिन वह जाकर इंस्पेक्शन करता था स्कूलों का। तो पहले तो उसके साथी इंस्पेक्टरों को शक हुआ था कि इसका दिमाग खराब हो गया है, क्योंकि जो समझदार थे वे घर ही बैठ कर रिपोर्ट भर देते थे डायरी में। कोई समझदार कहीं जाता है इंस्पेक्शन करने को कभी। यह आदमी जाने लगा था, तो शक पैदा हुआ था। फिर इसने जो रिपोर्ट दी थी, उनसे बहुत घबड़ाहट पैदा हो गई थी।

स्कूल में वह आया, तो पूरे स्कूल में तैयारी थी--शिक्षक तैयार थे, बच्चे तैयार थे--स्कूल की सबसे बड़ी कक्षा में वह गया और उसने कहाः मैं एक प्रश्न पूछूं, इस प्रश्न का आज तक कोई उत्तर नहीं दे सका है, अगर तुममें से किसी ने इसका उत्तर दे दिया, तो फिर आगे मैं कोई प्रश्न नहीं पूछूंगा, क्योंकि हंडिया का एक चावल ही देख लेना काफी होता है। और अगर तुम इसका उत्तर नहीं दे पाए तो फिर मैं बहुत प्रश्न पूछूंगा, फिर मैं हूं और तुम हो। उसके पहले प्रश्न को थर्राती हुई जिज्ञासा से बच्चों ने सुना। प्रश्न ऐसा था कि बच्चों के तो प्राण वहीं के वहीं सहम गए होंगे, श्वास वहीं की वहीं बंद हो गई होगी। प्रधान अध्यापक खड़ा था, वह भी थर-थर कांपने लगा क्योंकि उस प्रश्न का कोई उत्तर हो ही नहीं सकता था, वह प्रश्न ही नहीं था। उस आदमी ने पूछा कि दिल्ली से एक हवाई जहाज कलकत्ता की तरफ उड़ा दो सौ मील प्रति घंटे की रफ्तार से, तो क्या तुम बता सकते हो, मेरी उम्र कितनी है? इसमें न कोई तुक था, न कोई संगति थी, यह बड़ा अध्यात्मिक, बड़ा फिलोसफिकल प्रश्न था। बच्चे तो घबड़ा कर रह गए, अध्यापक भी खड़े रह गए। और भी घबड़ाहट तो तब हुई जब एक बच्चे ने ऊपर हाथ उठाया, उत्तर देने को, तब तो अध्यापकों के और प्राण निकल गए। यह बेहतर था कि बच्चे चुप रह जाते, क्योंकि अज्ञानपूर्ण व्यर्थ के प्रश्नों के समक्ष समझदार का चुप रह जाना ही उचित है।

लेकिन एक बच्चे ने हाथ हिलाया, इंस्पेक्टर प्रसन्न हुआ और उसने कहाः तुम पहले बच्चे हो जिसने उत्तर देने की हिम्मत की है, खड़े हो जाओ। वह बच्चा खड़ा हुआ। उस इंस्पेक्टर ने पूछाः कितनी है मेरी उम्र? उस बच्चे ने कहाः आपकी उम्र चवालीस वर्ष है। उसकी उम्र चवालीस वर्ष थी। वह इंस्पेक्टर तो भौचक्का, उसके हैरान होने की बारी आ गई। वह एकदम हैरान रह गया, उसने कहा, किस हिसाब से तुमने मेरी उम्र निकाली? उसने कहाः हिसाब बहुत आसान है, और मेरे अतिरिक्त... लेकिन इस हिसाब को कोई भी नहीं कर सकता। मेरा बड़ा भाई है, वह आधा पागल है। उसकी उम्र बाईस वर्ष है। आप सारे मुल्क में पूछ लेते तो भी इसका उत्तर मिलने वाला नहीं था, यह उत्तर मैं ही दे सकता हूं।

हमें हंसी आती है इस बात पर। लेकिन जिनको हम बहुत ज्ञानी कहें, और जिनके ज्ञान की हम निरंतर स्तुति किया करते हैं, वे इससे भी फिजूल बातों पर विचार करते रहे हैं और प्रश्न पूछते रहे हैं।

मध्य-युग में यूरोप के साधु-संत इस बात पर विचार करते रहे कि एक सुई की नोंक पर कितने फरिश्ते खड़े हो सकते हैं? ये इस इंस्पेक्टर से ठीक हालत में थे ये लोग? लूथर जैसे समझदार आदमी ने यह लिखा है कि

मक्खियां शैतान के द्वारा बनाई गई हैं। क्यों? क्योंकि जब लूथर धर्मग्रंथ पढ़ता था तो मक्खियां उसकी नाक पर आकर बैठ जाती थीं। साफ है कि मक्खियां धर्म के कार्य में बाधा देने के लिए बनाई गईं; तो भगवान तो नहीं बना सकता, इसको शैतान ने बनाया। इस पर विवाद चलता रहा कि मक्खियां किसने बनाईं? ईश्वर ने बनाई है कि शैतान ने? ये उस इंस्पेक्टर से कुछ ठीक प्रश्न थे? स्वर्ग और नरक के नक्शे बनाए जाते रहे और उन पर विवाद होता रहा कि कौन सा नक्शा ठीक है? जैनियों का नक्शा ठीक है कि हिंदुओं का नक्शा ठीक है? स्वर्ग कितनी दूर है जमीन से, कितने योजन, कितने मील? किसका हिसाब ठीक है? देवताओं की लंबाई कितनी होती है, उम्र कितनी होती है? इस पर विवाद होते रहे हैं। और यह विवाद करने वाले लोग इतनी गंभीरता से, इतनी सीरियसनेस से ये बातें करते रहे हैं कि सामान्य-जन को ऐसा मालूम पड़ा है कि बहुत जरूरी बातें जिंदगी के बाबत सोची जा रही हैं। और फिर इन बातों से, इन विचारों से जो नतीजे निकाले हैं, जैसे उस लड़के ने चवालीस वर्ष की उम्र का नतीजा निकाला। इनसे जो नतीजे निकाले हैं उन पर आम आदमी को कहा गया है कि तुम विश्वास करो। हमने खोज लिया है, तुम विश्वास करो; हमने पता लगा लिया है, तुम विश्वास करो; तुम्हारा काम है विश्वास करने का।

जरूर ये सारे लोग किसी बहुत गहरी अहमन्यता से, किसी बहुत गहरी ईगोइज्म से पीड़ित रहे होंगे जिन्होंने यह कहा है हमने खोज लिया है और तुम विश्वास करो। हम हैं खोजने वाले, हम हैं बताने वाले, तुम हो मानने वाले। दुनिया में कोई मानने वाला नहीं है। हर आदमी जिसे परमात्मा को जानना हो, सत्य को जानना हो, उसे मानने वाला नहीं उसे खुद ही खोजने वाला होना पड़ेगा। कोई दूसरा आदमी बताने वाला नहीं हो सकता। क्योंकि हर बताने वाला आदमी जो दूसरा उसको मान लेता है, दूसरे आदमी को अंधा बनाने में सहयोगी हो जाता है। जब कि खोज के लिए खुली हुई आंखें चाहिए। इसलिए पहली बात मैं आपसे कहना चाहता हूं अपने विश्वासों की तरफ बहुत खुली आंख से देखें तो आपको पता चलेगा विश्वास झूठे हैं और सीखे हुए हैं, संदेह सच्चा है और अनसीखा हुआ है। वह आपके भीतर है, वह आपके प्राणों में है, वह आपकी आत्मा की ताकत है। संदेह आपकी शक्ति है और विश्वास, विश्वास बिल्कुल उधार जबरदस्ती आरोपित बातें हैं, इन उधार विश्वासों के साथ आपकी यात्रा नहीं हो सकती।

आपकी आत्मा की जो अपनी शक्ति है संदेह, संदेह किसी को कोई कभी सिखाता नहीं। संदेह जन्म के साथ जन्म लेता है। विश्वास सिखाए जाते हैं। विश्वास दूसरों से मिलते हैं, संदेह मेरा है। तो मैं संदेह को लेकर अगर चलूं कि यह मेरी ताकत है। यह मेरी इंक्वायरी है, यह मेरी खोज है, यह मेरा अन्वेषण है, यह मेरी जिज्ञासा है, यह मेरी प्यास है। अगर इसको लेकर मैं चलूं तो, तो शायद मैं जीवन की गहराइयों में उतर सकता हूं, अन्यथा नहीं। दूसरों की बातें लेकर चलूंगा, तो कैसे उतर सकूंगा?

लेकिन हम सब उधार ज्ञान से पीड़ित लोग हैं, और यह सारा उधार ज्ञान एक ही, एक ही बिंदु पर टिक गया है और वह यह है कि विश्वास करना चाहिए। मैं आपसे कहना चाहता हूं जो आदमी विश्वास करता है, वह आदमी कभी भी धार्मिक नहीं है। इसीलिए तो विश्वास करने वाले लोग जमीन पर इतने हैं, लेकिन धर्म कहां हैं? कभी सोची यह बात, हर आदमी विश्वासी है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कोई है; कोई किसी बात में विश्वास कर रहा है, कोई किसी बात में, लेकिन धर्म कहां है दुनिया में? जब इतने लोग धार्मिक हैं तो धर्म भी तो होना चाहिए था, लेकिन वह नहीं है। निश्चित ही धर्म के संबंध में कोई बुनियादी भूल हो रही है। और पहली भूल है, और वह है विश्वास के द्वारा आंखों के बंद हो जाने के लिए राजी हो जाना। मत राजी हों, इनकार करें, जो आदमी इनकार नहीं करता वह आदमी जिंदा नहीं है, इनकार करें चारों तरफ से आते हुए प्रभाव को, जो कहता है कि विश्वास करो और भीतर की जिज्ञासा को दबा देना चाहता है, भीतर की आत्मा को बंद कर देना चाहता है। भीतर के प्राणों को परतंत्र कर देना चाहता है, चारों तरफ के प्रभाव से सजग होना

जरूरी है और उसके प्रति एक गहरा इनकार, एक पूर्ण इनकार मन के भीतर स्पष्ट होना चाहिए कि मैं किसी भी प्रभाव के कारण स्वीकार नहीं करूंगा। उस दिन तक जब तक कि मैं न जान लूं। ऐसी जिसके भीतर जिज्ञासा होती है, ऐसी अदम्य जिसके भीतर प्यास होती है, वह जरूर जानने में समर्थ हो जाता है। यह पहली बात है।

दूसरी बात, विश्वास को हटा दें और विचार को भीतर जन्म दें। लेकिन विचार का जो दूसरा सूत्र है, विचार को जन्म देने की जो बात है, वह भी बहुत सोच लेने की है। विचार के आधार पर या विचार के नाम पर हम एक बड़ी अजीब बात कर लेते हैं, हम विचार को जन्म देने के नाम पर विचारों को संग्रह कर लेते हैं और सोचते हैं हमारे भीतर विचार का जन्म हो गया। थिंकिंग के नाम पर हम थॉट्स को इकट्ठा कर लेते हैं। विचार करने की क्षमता के नाम पर हम विचारों का जमघट इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं कि हम विचारपूर्ण हो गए। विचारशीलता में और विचार के संग्रह में बुनियादी भेद है। बल्कि सच्चाई यह है जो आदमी जितने विचारों को इकट्ठा करने के लिए उत्सुक हो जाता है समझ लेना उसके भीतर विचार की क्षमता उतनी ही कम है। वह उसी क्षमता की कमी की पूर्ति इस भांति विचारों को इकट्ठा करके कर लेने की कोशिश कर रहा है। विचारना, विचार की शक्ति हमारे भीतर होनी चाहिए, विचारों का संग्रह नहीं।

लेकिन सारी दुनिया में विचारों का संग्रह चलता है। कॉलेज में, स्कूल में, समाज में, सभ्यता में, सब तरफ हम विचारों को इकट्ठा कर रहे हैं। और जब हमारे पास विचारों का बहुत सा कचरा इकट्ठा हो जाता है तो हम सोचते हैं कि हम विचारक हो गए। और जब एक आदमी वेद और उपनिषद के उद्धरण देने लगता है तो हम उसके पैर छूने लगते हैं कि यह आदमी ज्ञानी हो गया।

ये सारे उद्धरण, यह वेद, उपनिषद, गीता और बाइबिल और सारे शास्त्र और उन सबका स्मरण एक बिल्कुल यांत्रिक प्रक्रिया है, इससे ज्ञान का और विचार का कोई संबंध नहीं है। शायद आपको पता न हो, अब तो यांत्रिक मस्तिष्क बन गए हैं, और आदमी के मन की स्मृति पर निर्भर रहने की अब कोई जरूरत नहीं है, अब तो मशीन उत्तर दे सकती है। मशीन से पूछें कि फलानी ऋचा का क्या अर्थ है? तो मशीन उत्तर दे सकती है। या गीता के फलाने-फलाने हिस्से में क्या लिखा हुआ है, तो मशीन उत्तर दे सकती है।

पिछली बार शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में पहली दफा यह घटना घटी। कोरिया की लड़ाई के वक्त चीन से अमरीका युद्ध में आगे बढ़े या न ब.ढ़े, इसका निर्णय सेनापतियों ने नहीं किया, मशीन ने किया। मशीन से पूछा गया, जिस मशीन को कोरिया की स्थिति के बाबत सब पता है, जिस मशीन को चीन की स्थिति के बाबत सब पता है, जिस मशीन को अमरीका की ताकत के बाबत सब पता है, उस मशीन से पूछा गया है कि इस समय चीन से युद्ध में उतरना ठीक है या नहीं? मशीन ने उत्तर दिया, बिल्कुल ठीक नहीं। और युद्ध में चीन के आगे फिर अमरीका नहीं बढ़ा, हाथ उसने खींच लिए। मशीन को सब जानकारी दे दी जाती है, वह उत्तर दे देती है।

आपका दिमाग क्या करता है? जानकारी दिमाग में भर दी जाती है, दिमाग उत्तर देने लगता है। मैंने आपसे पूछा, आपका नाम, आप फौरन बोले, राम। आप सोचते हैं आपने यह बहुत विचारपूर्ण काम किया? आपको बचपन से भर दिया गया कि आपका नाम राम, आपका नाम राम, यह आपकी स्मृति में जाकर टंकित हो गया। यह टेप रिकॉर्ड हो गया। बाहर से प्रश्न आया, आपका नाम, भीतर से स्मृति बोली, राम। आप समझे कि आप विचारक हो गए। यह काम तो मशीन कर देती है। इसमें कोई विचारशील हो जाने का सवाल नहीं है। विचारशीलता विचारों का संग्रह नहीं है। फिर विचारशीलता क्या है? अगर विचारशीलता विचारों का संग्रह नहीं है, तो विचारशीलता क्या है? विचारशीलता है जीवन के प्रति एक सचेतना, जीवन के प्रति एक जागरूकता, जीवन के प्रति निरंतर प्रतिक्षण जागा हुआ होना। जो आदमी प्रतिक्षण, जीवन में तो प्रतिक्षण चारों ओर से हमारे ऊपर घटनाएं घट रही हैं, आघात हो रहे हैं, उनके उत्तर हमारे भीतर से आने हैं।

सुभाष बाबू के बड़े भाई थे, शरद चंद्र। वह ट्रेन में सफर करते थे। बाथरूम में स्नान करने को गए, सांझ का वक्त, अंधेरा हो गया। वह स्नान करते थे, उनकी कीमती घड़ी हाथ से छूट गई और संडास के रास्ते नीचे ट्रेन के गिर गई। बाहर आए, उन्होंने चेन खींची, गाड़ी रुकी, लेकिन रुकते-रुकते तो कोई एक मील का फासला तय हो गया। अंधेरी रात, ड्राइवर और कंडक्टर ने और गार्ड ने कहाः बहुत मुश्किल है घड़ी को खोजना, एक मील पीछे न मालूम घड़ी कहां पड़ी हो, इस अंधेरी रात में उसे कैसे खोजा जा सकता है? शरद चंद्र ने कहाः नहीं, कठिनाई नहीं होगी, मैंने जलती हुई सिगरेट उसके पीछे ही डाल दी। तो मेरी सिगरेट जहां पड़ी होगी उसके ठीक एक फीट के घेरे में घड़ी होनी चाहिए। और जलती हुई सिगरेट है वह अंधेरे में भी दिखाई पड़ जाएगी, आप आदमी भेजें। वह घड़ी मिल गई, वह जलती सिगरेट के एक फीट पास पड़ी हुई थी।

इस आदमी की घड़ी गिरी, आपकी घड़ी गिरती आप क्या करते? शायद चिल्लाते कि अरे मेरी घड़ी गई, बाहर आकर बताते कि मेरी घड़ी गिर गई, चेन खींचते। लेकिन तब तक गाड़ी बहुत आगे निकल चुकी होती। इस आदमी ने बड़ी विचारशीलता का प्रमाण दिया। इसने बड़ी जागरूकता का प्रमाण दिया। घड़ी गिरी एक घटना खड़ी हो गई, एक समस्या खड़ी हो गई, इस आदमी ने होश से देखा और एक क्षण में उसे यह बात दिखाई पड़ गई कि घड़ी नहीं खोजी जा सकेगी, इसने जलती हुई सिगरेट उसके पीछे डाल दी। यह एक क्षण में हो गया, और यह बात स्मृति से नहीं हुई, क्योंकि जिंदगी में यह पहला ही मौका था, इसकी कोई मेमोरी नहीं थी, इसकी कोई स्मृति नहीं थी। यह कोई रोज-रोज घड़ी गिराने का काम नहीं हुआ था, यह किसी किताब में पढ़ा नहीं था कि घड़ी गिर जाए तो जलती हुई सिगरेट पीछे डाल देना।

अब आप डाल सकते हैं लेकिन वह विवेकशीलता नहीं होगी। यह तो आदमी को तत्क्षण उसके जागे हुए होने का सबूत था। एक घटना घटी है चित्त पूरा जागा हुआ है। और मार्ग खोज लेता है। विचारशीलता का अर्थ हैः प्रतिक्षण जागे हुए होना। विचारों का संग्रह नहीं है। इसलिए पंडित और विचारशील दो अलग बातें हैं। पंडित तो अक्सर जड़बुद्धि होता है, बहुत कुछ उसे याद होता है। लेकिन जिंदगी जहां समस्या खड़ी करती है, वहां वह अपनी स्मृति में खोजने लगता है। वहां उसके सामने सीधा विवेक कोई उत्तर नहीं देता।

एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था, जिसे गणित में सब कुछ, उस समय गणित में जो कुछ भी खोज हुई थी, सभी कुछ पता था। गणित का ऐसा कोई सवाल न था जो वह हल न कर लेता। सारी जिंदगी उसकी गणित थी। वह अपने बच्चों को लेकर, अपनी पत्नी को लेकर पिकनिक पर गया हुआ था। बीच में एक छोटा नाला पड़ा, उसकी पत्नी ने कहा, पांच-छह बच्चे थे, उसने कहा कि बच्चों को ठीक से पार करा दो। उसने कहाः ठहरो, मैं एवरेज गहराई नाप लेता हूं, औसत गहराई का पता लगा लेता हूं। वह अपना फुट पास में ही रखता था। उसने से जल्दी से जाकर, छोटा सा नाला था, उसको चार-छह जगह फीट को डाल कर नापा, जल्दी से रेत पर आकर हिसाब लगाया, उसने कहा, बेफिकर रहो, हमारे एवरेज बच्चा ऊंचा है गहराई से। एवरेज गहराई कम है, एवरेज बच्चा ऊंचा, आने दो। वह आगे चला गया। कोई बच्चा बड़ा था, कोई बच्चा छोटा था, कोई बहुत छोटा था। बच्चे डुबकी खाने लगे, उसकी पत्नी चिल्लाई कि बच्चे डूबते हैं, वह भागा उस पार जहां उसने हिसाब किया था रेत पर कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो गई? वह बच्चा डूबता रहा, वह गणितज्ञ भागा रेत के किनारे, ऐसा कैसे हो सकता है? उसने कहाः मैंने हिसाब बिल्कुल ठीक लगाया हुआ था। वह वापस गया अपना हिसाब देखने, और बच्चा वहां डुबकी खा रहा था और मर रहा है।

यह आदमी... यह आदमी कैसा है? इसमें बुद्धिमत्ता तो जरा भी नहीं है, विचारशीलता तो जरा भी नहीं है। हां, कुछ जिसको कहें, पांडित्य गणित का बहुत है, शायद गणित में उससे कोई नहीं जीत सकता था, परीक्षा होती तो गोल्डमेडल उसे मिलता। इसीलिए तो यह होता है कि विश्वविद्यालय जिनको गोल्डमेडल देते हैं, जिंदगी उनका कोई भी सम्मान नहीं कर पाती, जिंदगी में उनका कहीं कोई पता नहीं चलता। पंडित तो वे होते

हैं, विचार का संग्रह खूब होता है, हिसाब खूब होता है। लेकिन जिंदगी पांडित्य नहीं पूछती, जिंदगी तत्क्षण विचारशीलता की मांग करती है। क्योंकि एक क्षण आप चूके आप हिसाब लगाने में रह गए और जिंदगी बह गई। जिंदगी ठहरी थोड़े ही रहती है, आपके लिए कि कल आना और उत्तर दे देना।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा रूसी डाक्टर था। वह बच्चों की अंतिम चिकित्सा के विज्ञान की परीक्षा ले रहा था। उसने एक युवक को पूछा, जिसकी सारी परीक्षाएं हो गई थीं, और अंतिम उसकी मुखाग्र परीक्षा हो रही थी। और अंतिम डिग्री थी रूस में जो चिकित्सा विज्ञान में मिलती है। उसने उससे पूछा कि इस-इस तरह का मरीज है और यह-यह दवा है, कितनी दोगे? उसने कुछ उत्तर दिया, उत्तर देकर वह बाहर चला गया। दरवाजा खोल कर वह बाहर हो रहा था तब उसे ख्याल आया कि इतनी मात्रा में देने से तो वह, पाय.जन है, वह मरीज मर जाएगा, मात्रा ज्यादा हो गई, वह वापस लौटा और उसने कहा, माफ करिए, मैंने थोड़ा ज्यादा बता दिया, आधी देंगे। उस डाक्टर ने कहाः बाहर हो जाओ, मरीज मर चुका है। सवाल थोड़ी है यह कोई, तुम दे चुके दवा, मरीज मर चुका, जिंदगी रुकी थोड़ी रहेगी तुम्हारे लिए कि तुम फिर लौट कर आ गए और कहने लगे कि वह, जरा ज्यादा मात्रा हो गई, थोड़ा कम देंगे। वह विद्यार्थी असफल हो गया। उसके उस परीक्षक ने कहा कि मरीज मर चुका है, आप लौट जाइए, बात खत्म हो गई। जिंदगी रुकती नहीं है।

जिंदगी रुकती नहीं है तो इसका मतलब क्या हुआ, इसका मतलब हुआ कि प्रतिक्षण हमें जागा हुआ होना चाहिए। जब जिंदगी सामने हो तब भीतर होश होना चाहिए। विचार का अर्थ हैः अत्यंत होशपूर्वक जीना। विचार का संग्रह नहीं, निरंतर सावधानी से जीना। निरंतर जागे हुए जीना वह विचार का अर्थ है।

तो दूसरा सूत्र हैः चित्त निरंतर विचारपूर्ण होना चाहिए। विचारों से भरा हुआ नहीं, बल्कि विचारशीलता से भरा हुआ। कैसे यह चित्त विचारशीलता से भरेगा? उसके लिए तीसरा सूत्र, अंतिम सूत्र आपसे कहना चाहता हूं। और यह बड़े आश्चर्य की बात है, शायद यह देखने में बात विरोधी मालूम पड़ेगी, वही व्यक्ति सर्वाधिक विचारशील होता है, जिसके चित्त में सबसे कम विचार होते हैं। जिसके चित्त में जितने कम विचार होते हैं उतनी ही ज्यादा विचारशीलता हो सकती है। और जब विचार बिल्कुल नहीं होते हैं तो चित्त परिपूर्ण विचार में उपस्थित हो जाता है, मौजूद हो जाता है। जब बिल्कुल थॉटलेस होता है मस्तिष्क, जब चित्त बिल्कुल विचार से शून्य होता है, तभी विचारशीलता अपनी परिपूर्णता पर होती है। यह बात देखने में उलटी मालूम पड़ेगी, लेकिन इस बात से बड़ा और कोई सत्य नहीं है। जब विचार की कोई तरंग चित्त पर नहीं होती, तो चित्त सर्वाधिक रूप से जागरूक होने में समर्थ होता है। और तब जीवन से सीधा रिस्पांस होता है, तब जीवन से सीधा संबंध होता है। तब जीवन उधर एक बात खड़ी करता है, और इधर मन उसके उत्तर से शब्दों में नहीं बल्कि समस्त, समग्ररूप से उसकी चुनौती को स्वीकार करने में, और उसके निदान हल करने में समर्थ हो जाता है।

जैसे एक दर्पण हो, और दर्पण के ऊपर अगर धूल पड़ी हो, तो फिर दर्पण बाहर जो है उसके प्रतिफलन में समर्थ नहीं रह जाता। धूल न हो तो दर्पण के सामने कुछ भी आ जाए दर्पण पूरा प्रतिफलन करता है। ऐसा ही चित्त जब विचार की धूल से बिल्कुल मुक्त होता है तो एक दर्पण बन जाता है और जीवन को पूरे अर्थों में पूरी सर्वांगीणता में प्रतिफलित करता है, रिफ्लेक्ट करता है। और तब हमारे भीतर से जो बाहर का जगत है उससे एक अंतर्संबंध, भीतर और बाहर के बीच एक सेतु बन जाता है, एक ब्रिज बन जाता है, और तभी हम जान पाते हैं कि समग्रता क्या है? समग्रता में ही सत्य है। तब हम व्यक्ति नहीं रह जाते, विचारों का घेरा हमें व्यक्ति बनाता है और निर्विचार की स्थिति हमें अव्यक्ति से जोड़ देती है, वह जो सबके भीतर छिपा है उससे एक कर देती है। और वहीं सत्य का, अमृत का, परमात्मा का या कोई और नाम हम उसे दें, या परममुक्ति का या मोक्ष का पहला अनुभव शुरू होता है।

तो यह तीसरा सूत्र हैः निर्विचारना। और निर्विचारना से विचार की क्षमता, वैचारिकता, विचार की शक्ति, होश और जागरूकता का जन्म होता है। इस तीसरे सूत्र पर थोड़ी बात कर लेनी जरूरी है। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी है। विचार से मुक्ति, निर्विचारना, मन से विचारों की सारी लहरों का शांत हो जाना कैसे हो सकता है? किस भांति, क्या रास्ता हो सकता है? क्या दिशा हो सकती है? कौन सा आयाम हो सकता है जहां सारे विचार खो जाएं? और एक साइलेंस, और एक मौन भीतर उपस्थित हो जाए। इस तीसरे सूत्र को हल करने के लिए दो छोटे सूत्र समझ लेने होंगे।

एक--मनुष्य मन के प्रति बिल्कुल सोया हुआ है। जिस मात्रा में सोया हुआ होगा उसी मात्रा में विचारों की भीड़ उसके मन पर दौड़ती रहेगी। क्या आपको ख्याल है जब आप रात सोते हैं तो सारी रात सपनों से भर जाती है? और क्या आपको यह भी पता है वे सपने ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे बिल्कुल सच हों? कभी आपको सपने में ऐसा पता चला क्या कि जो मैं देख रहा हूं वह झूठा है? सपनें में जो भी आप देख रहे हैं सभी सच है। ऐसी एब्सर्ड बातें भी सच हैं जिनको आप जाग कर कहेंगे कि क्या मैं पागल था जो इसको मैं सच मानता रहा। यह बात तो हो ही नहीं सकती। लेकिन सपने में उस पर शक पैदा नहीं होता। क्यों? क्योंकि सपने में आप बिल्कुल सोए हुए हैं। सोया हुआ व्यक्ति जागरूक नहीं है कि क्या सत्य है और क्या असत्य है, क्या वास्तविक है, क्या काल्पनिक है। जिस मात्रा में सोया हुआ है उसी मात्रा में फिर सभी सच हैं जो भी चल रहा है। सभी सच हैं। और मन पर जो भी आ रहा है वह सभी ठीक प्रतीत होता है। लेकिन सुबह आप जागते हैं, और जागते से हंसने लगते हैं कि यह सब क्या चला, यह सब सपने में क्या हुआ? मैं कहां-कहां की यात्रा किया, कहां-कहां गया, और पड़ा हूं अपने घर। यह सब झूठा था। यह सब कल्पना थी। यह आपको कैसे पता चला? यह बात आप सपने में भी तो मौजूद थे तब पता क्यों न चली? आप सोए हुए थे, अब आप जाग गए हैं। इतना फर्क पड़ गया है। और इस फर्क ने बुनियादी फर्क ला दिया। जो सपने सच मालूम होते थे वे झूठ मालूम होने लगे। लेकिन जिसे हमें जागरण कहते हैं वह भी पूरा जागरण नहीं है। एक और जागरण है, इसके भी ऊपर एक जागरण है, और जिस दिन वह जागरण किसी को उपलब्ध होता है उस दिन जिस जिंदगी को हम इस जागने में सच समझे हुए थे, जिन विचारों को, जिन सपनों को, वे भी एकदम झूठे मालूम पड़ते हैं। तब ज्ञात होता है कि वह भी एक सपना था। वह भी एक सपने से ज्यादा नहीं था। और चूंकि हम सोए हुए थे इसलिए वह हमें सच मालूम पड़ रहा था, उसमें कोई सच्चाई न थी।

चीन में एक बादशाह, एक ही लड़का था उसका, वह मरणशय्या पर पड़ा था। बूढ़ा बादशाह, एक ही लड़का, वह मरने के करीब है। चिकित्सक इनकार कर चुके कि बच नहीं सकेगा। वह रात भर उसके पास बैठा रहा। दो रात बीत गईं, तीसरी रात आ गई है, शायद आज सुबह नहीं हो सकेगी। लड़के की जिंदगी की ज्योति बुझी-बुझी मालूम होती है। तीन दिन का जागा हुआ राजा, बूढ़ा आदमी, वह उसकी खाट के ऊपर ही सिर रख कर सो गया। सोते ही उसने एक सपना देखा, उसने सपना देखा वह सारे जगत का सम्राट हो गया है। एक छोटे से राज्य का सम्राट था, सपने में देखा सारी पृथ्वी का राजा हो गया। सारी पृथ्वी उसके अंतर्गत है। चक्रवर्ती सम्राट हो गया है। बारह उसके लड़के हैं, बहुत सुंदर, बहुत युवा। बहुत सुंदर उसकी पत्नियां हैं। सब सुंदर है, सब सुखद है, और तभी वह जो सामने लड़का उसका सोया था, मरणासन्न, वह मर गया। महल में रोना-पीटना होने लगा। उसकी पत्नी आई छाती पीट कर चिल्लाई कि उसकी नींद टूट गई। नींद टूट गई तो वह सारा राज्य, वह सपना, सारी पृथ्वी का राज्य, वे बारह सुंदर युवक पुत्र, वे सुंदर रानियां, वे सब समाप्त हो गए। आंख खुली तो देखा कि वह लड़का समाप्त हो गया है।

वह हंसने लगा। उसकी पत्नी हैरान हो गई। उसने कहाः आप हंसते हैं? और लड़का चल बसा। वह बोला मैं किन लड़कों के लिए रोऊं? बारह लड़के और थे, वे भी चल बसे, एक बड़ा राज्य था, वह भी छिन गया।

तुमसे बहुत सुंदर पत्नियां थीं, वे अब नहीं हैं। मैं उनके लिए रोऊं या इस एक लड़के के लिए जो चल बसा है? और मजा यह है कि जब मैं सो गया था, तो न यह लड़का मेरे लिए था, न तुम थी, न यह राज्य था। और एक और राज्य था, और लड़के थे, और रानियां थीं। अब जब मैं जाग आया हूं, तो वह राज्य नहीं है, वे लड़के नहीं हैं, वे रानियां नहीं हैं। अब यह लड़का है और तुम हो, और रात मैं फिर सो जाऊंगा। और फिर कोई दूसरे सपने में जाग जाऊंगा। उसने राजा ने कहाः मैं किसके लिए रोऊं यह नहीं समझ पा रहा हूं? इसलिए मुझे हंसी आ गई, क्योंकि जिंदगी में यह पहला मौका है कि मेरे सामने विकल्प खड़ा हुआ है कि मैं किसके लिए रोऊं? उन लड़कों के लिए जो बहुत सुंदर थे और बारह थे, उस राज्य के लिए जो बहुत बड़ा था। या इस लड़के के लिए जो एक था, अकेला था, और इस छोटे से राज्य के लिए, और तुम्हारे लिए, किसके लिए रोऊं?

एक और जागरण है, जहां हम जिंदगी के विचारों के घिरे हुए जाल से और ऊपर उठते हैं। वह जागरण पैदा किया जा सकता है। जागने की निरंतर सतत प्रक्रिया से ही वह जागरण पैदा हो जाता है। हमने जागने की कभी कोई कोशिश नहीं की। कभी आकस्मिक जागने के कोई क्षण आते हैं, आप रास्ते में जाते हो, कोई छुरा लेकर आपके सामने खड़ा हो जाए, एक क्षण को आपके भीतर एक अवेकनिंग पैदा होगी, एक क्षण को आप पूरी तरह जाग जाएंगे, जैसे सारी नींद टूट गई, सारे विचार खत्म हो जाएंगे, सारे सपने छिन जाएंगे, सिर्फ एक तथ्य सामने खड़ा रह जाएगा और आपकी चेतना एक दर्पण बन जाएगी--एक क्षण को। फिर बात खत्म हो जाएगी। कोई घर में मर जाएगा, कोई बहुत प्रियजन, उसकी मृत्यु एक चोट कर देगी, और भीतर एक जागरण फलित होगा, एक क्षण को आप ठिठके रह जाएंगे और फिर सब विलीन हो जाएगा। जिंदगी में कभी-कभी किन्हीं क्षणों में जागरण पैदा होता है, लेकिन इस जागरण को सतत सावधानी से भीतर जगाया जा सकता है। चलते, उठते, बैठते यह पैदा किया जा सकता है।

एक छोटी सी घटना कहूं, उससे मेरी यह बात समझ में आ जाएगी।

जापान में एक राजकुमार को उसके गुरु के घर भेजा गया। भेजा गया था जागरण सीखने के लिए। और जिसके पास भेजा गया था, वह अजीब गुरु था। उसने अपने घर के सामने तख्ती लगा रखी थी कि यहां तलवार चलानी सिखाई जाती है। राजाकुमार बहुत हैरान हुआ। अपने पिता पर उसको हंसी आई, किस गुरु के पास भेजा है जो तलवार चलाना सिखाता है, जागरण से इसका क्या संबंध? उस गुरु के पास गया। उस गुरु ने कहाः आए हो ठीक, लेकिन जल्दी मत करना। जो हम सिखाते हैं वह जल्दी नहीं सीखा जा सकता। और अब तुम मुझसे यह भी मत कहना कभी कि कब सिखाना शुरू करेंगे, कब पाठ शुरू होगा। वह जब मुझे मर्जी आएगी तब पाठ शुरू हो जाएगा। राजकुमार रहा, कुछ दिन बीते, एक दिन अचानक पीछे से गुरु ने आकर लकड़ी की तलवार से उसके ऊपर हमला कर दिया। वह तो घबड़ा ही गया कि यह क्या हो रहा है? यह कैसा पाठ हो रहा है? वह चौंक कर खड़ा हो गया, और उसके सिर में चोट आ गई। उसने कहाः आप यह क्या करते हैं, आपका दिमाग तो ठीक है? उस गुरु ने कहाः पाठ शुरू कर दिया गया है। अब कभी भी, किसी भी वक्त मैं हमला कर दूंगा। तुम्हें तैयार रहना पड़ेगा। तुम होश से रहना। कोई भी वक्त तुम खाना खा रहे हो और हमला हो सकता है; तुम किताब पढ़ रहे हो, हमला हो सकता हैः तुम स्नान कर रहे हो, हमला हो सकता है। कोई भी क्षण, अब तुम्हारी शिक्षा शुरू हो रही है।

यह बड़ी अजीब बात थी, और बड़ी अजीब शिक्षा थी। रोज दिन में दस-पांच दफा हमला होने लगा। हड्डी-पसली उसे लड़के की चोट खाने लगीं। राजकुमार था, कभी ऐसी चोटें खाई भी नहीं थी। न मालूम कब कुछ भी काम करता हो और पीछे हमला हो जाता। लेकिन एक सप्ताह में ही उसे एक नई बात का अनुभव हुआ, भीतर एक तरह की सावधानी तैयार होने लगी। चौबीस घंटे जैसे भीतर कोई सचेत रहने लगा, सतर्क रहने

लगा। होता है हमला, अभी हो सकता है, कभी भी हो सकता है, कोई भी क्षण हमला बन सकता है। एक महीना बीतते-बीतते तो वह हैरान हो गया। उसके भीतर कोई बलशाली चेतना खड़ी हो गई। हमला होता था, और हमले के साथ ही उसका हाथ अनजाने उठ जाता, हमले को रोक लेता। अब चोट खानी मुश्किल हो गई थी। जैसे अपने आप सारा शरीर, सारी चेतना हमले से बचाव करने लगी थी। वह काम कर रहा है और पीछे से हमला होता है और हाथ उठ जाएगा और हमला रोक लिया जाएगा। एक महीने तक सतत सावधानी का यह परिणाम हो जाना स्वाभाविक था।

तीन महीने बीत गए अब गुरु को चोट पहुंचानी कठिन हो गई थी। कैसे भी असावधानी के क्षण में हमला किया जाए, सारा शरीर, सारा प्राण रक्षा कर लेता था। तीन महीने बाद गुरु ने कहाः अब सोते में भी सावधान रहना। नींद में भी हमला किया जा सकता है। यह और कठिनाई थी। जागते तो जागते ठीक था, नींद में हमला होगा! और नींद में हमले होने शुरू हो गए। और राजकुमार सो रहा है और कभी भी रात में दो-चार बार गुरु हमला कर देगा। पहले तो उसे बड़ी मुश्किल हुई, चोट फिर पड़ने लगी शरीर पर। लेकिन चेतना एक ही महीने में और गहरी हो गई। नींद में भी कोई जैसे बोध भीतर मौजूद रहने लगा कि हमला हो सकता है। एक मां सोती है, बच्चा रोता है, घर भर के लोगों को पता नहीं चलता, उसका हाथ चला जाता है और बच्चे को समझा लेता है और सुला देता है। शायद उसे भी पता नहीं। लेकिन कोई भीतर एक सावधानी चल रही है। हम इतने लोग सब सो जाएं आज रात और एक आदमी आए और कहे, राम! राम! सारे लोग सोए रहेंगे, जिसका नाम राम है वह आंख खोल कर कहेगा, क्या बात है, कौन बुलाता है? सबके कानों में आवाज पड़ जाएगी राम की, लेकिन बाकी की राम के प्रति कोई सावधानी नहीं है, उस आदमी की है। राम के प्रति उसकी सावधानी है। तो नींद में भी एक चेतना काम करेगी।

एक महीना बीतते-बीतते नींद में भी हमले से रक्षा होने लगी। नींद में भी वह हाथ उठ जाता, नींद में भी वह बचाव कर लेता, सोता हुआ। तीन महीने बीत गए, पूरे छह महीने बीत गए थे। अब तो बड़ी अजीब बात हो गई थी, हमले की तो बात दूर गुरु की पगध्वनि भी सुनाई पड़ जाती। वह आ रहा है इसका भी पता चल जाता, हमला करना तो बहुत दूर। साल बीत गया। उस युवक को अब चोट पहुंचाना कठिन था।

एक दिन झाड़ के नीचे बैठे उसे ख्याल आया कि यह बूढ़ा मुझे काफी चोटें पहुंचा चुका। मैंने कभी ख्याल ही नहीं किया। आज मैं भी तो इस पर हमला करके देखूं। यह भी सावधान है या मुझको ही सावधान बनाए चला जा रहा है। दूर उसका गुरु बैठा था, दूर दरख्त के नीचे, वहीं से गुरु बोलाः ठहर! ठहर! मैं बूढ़ा आदमी हूं, हमला मत कर देना! अभी तो यह बैठा सोच ही रहा था, उसने कहाः ठहर! ठहर!

वह बहुत हैरान हो गया! उसने कहाः मैंने तो सिर्फ सोचा भर है, अभी हमला कहां किया?

गुरु ने कहाः और थोड़े दिन ठहर, जब और तेरी सावधानी बढ़ेगी, तो पगध्वनि नहीं, विचार की भी ध्वनियां भी सुनाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। वे भी सूक्ष्म तरंगें हैं। जो उतना सावधान होगा, वह उनके प्रति भी जाग जाता है।

वह सावधानी में दीक्षित होकर वापस लौटा। उसके गुरु ने उसे तलवार चलानी कभी नहीं सिखाई। वापस लौटा, उसके पिता ने कहाः तुम क्या सीख कर आए हो? उसने कहाः एक बड़ी अजीब बात, मैं सावधानी सीख कर आया, लेकिन अब मैं किसी भी तरह के तलवार बाज से जूझ सकता हूं, क्योंकि तलवार चलाने वाला सोचे इसके पहले कि कहां हमला करूं, मेरी सुरक्षा हो जाएगी। अब मैं सावधान हूं। मैंने तलवार चलानी नहीं सीखी, मेरा गुरु अजीब था, उसने मुझे तलवार चलाना कभी मुझे तलवार पकड़नी भी नहीं बताई, उसने कहा, तलवार पकड़ कर क्या करेगा, उससे क्या फायदा है? सवाल तो असल है कि तू जागरूक है तो तेरे ऊपर हमला नहीं हो सकता, हमले के पहले तेरी चेतना बचाव कर लेगी। तू तैयार है।

जीवन में हम सब भी अगर सावधानी से चलना, उठना, बैठना, सोना करने लगें, तो कोई तलवार चलानी सीखने की किसी गुरु के पास जाने की जरूरत नहीं है। अगर हम उठते-बैठते सावधानी का प्रयोग करने लगें, जैसे हमेशा सचेत रहने लगें, जैसे हमेशा इस बात का हमेशा स्मरण बना रहने लगे मैं क्या कर रहा हूं? कैसे उठ रहा हूं? कैसे बैठ रहा हूं? कैसे चल रहा हूं? एक-एक कदम, एक-एक श्वास हमारी होश से चलने लगे, हम उसके प्रति जागे रहने लगें, तो भीतर एक जागरूकता का जन्म निश्चित हो जाता है। और यह जागरूकता एक अदभुत परिणाम लाती है। इस जागरूकता के पैदा होते ही विचारों की भीड़ विदा हो जाती है, सपनों की भीड़ विदा हो जाती है। एक नया जागरण खड़ा हमने जिस चेतना के सामने कोई विचार नहीं टिकता, मन एकदम मौन और शांत हो जाता है, एक साइलेंस, एक मौन, एक शांति उत्पन्न होगी। इसी शांति में, इसी मौन में जाना जा सकता है वह जो है, पहचाना जा सकता है वह जो सत्य है, पहचाना जा सकता है वह जो प्राणों का प्राण है। इसी शांति में, इसी मौन में, इसी जागरूकता में जीवन का अर्थ और कृतार्थता उपलब्ध होगी। मृत्यु के बाहर पहुंच जाता है मनुष्य, दुख और पीड़ा के ऊपर उठ जाता है। और पहली बार परिचित होता है आनंद से, उस आनंद का नाम ही प्रभु है। उस आनंद तक प्रत्येक के लिए जाने का मार्ग है। लेकिन कोई दूसरे का बनाया हुआ मार्ग किसी दूसरे के काम नहीं आ सकता। खुद का मार्ग ही, खुद की जागरूकता का मार्ग ही प्रत्येक को निर्मित करना होता है।

मैंने ये छोटे से तीन सूत्र कहे, इन तीन सूत्रों पर थोड़ा विचार करेंगे, देखेंगे और थोड़ा प्रयोग करेंगे, तो वह जागरूकता का मार्ग आपका बनना शुरू हो जाएगा। और छोटी सी भी जागरूकता पैदा हो जाए, एक आदमी के हाथ में छोटा सा मिट्टी का दीया भी मिल जाए, और घनी अमावस की रात हो, अंधेरी और काली उस छोटे से दीये की जोत में वह हजारों मील की यात्रा कर सकता है। चार कदम तक प्रकाश हो जाता है, वह चार कदम चल लेता है, फिर और चार कदम तक प्रकाश हो जाता है और वह हजारों मील की यात्रा कर लेता है। सारी पृथ्वी की यात्रा एक मिट्टी के दीये से की जा सकती है। अगर आपके भीतर छोटी सी ज्योति भी जागरूकता की जलनी शुरू हो जाए, तो सारे परमात्मा की परिक्रमा की जा सकती है। और प्रत्येक मनुष्य करने में समर्थ है, करना चाहे तो। प्रत्येक मनुष्य मुक्त होने में समर्थ है, होना चाहे तो। प्रत्येक मनुष्य अपने पिंजरे के बाहर आ सकता है। लेकिन समझ ले ठीक से कि कहीं वह खुद ही तो अपने पिंजरे के सींखचों को पकड़े हुए नहीं है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

सत्य की भूमि

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं सोचता था रास्ते में आपसे क्या कहूं और मुझे ख्याल आया कि उन थोड़ी सी बातों के संबंध में आपसे कहना उपयोग का होगा जो मनुष्य को सत्य के पाने के लिए भूमिका बन सकती हैं। और इसलिए मेरी उत्सुकता है कि सत्य को पाने की भूमिका आपकी निर्मित हो, क्योंकि उसके बिना न तो आपको जीवन का कोई आनंद अनुभव होगा, न आपको जीवन मिलेगा, और न आप परिचित हो पाएंगे उस संगीत से जो सारे जगत में, सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है। सत्य को पाए बिना कोई मनुष्य न तो शांति को पा सकता है और न धन्यता को पा सकता है। हमारे भीतर जितनी पीड़ा और जितना दुख है, जितनी परेशानी और जितना असंतोष है, जितना संताप है, उसका एक ही कारण है, उसकी एक ही वजह है और वह यह है कि हमें अपनी सत्ता का, अपने स्वरूप का कोई बोध नहीं है। जिस व्यक्ति को अपनी सत्ता का ही कोई बोध न हो वह अपने जीवन को व्यवस्थित करने में सफल नहीं हो सकता है। और जिसे इस बात का पता न हो कि कौन उसके भीतर है, उसकी सारी दिशाएं भ्रमित हो जाती हैं। उसके सारे रास्ते खो जाते हैं। उसके चलने में कोई अर्थ नहीं रह जाता। और उसके जीवन के अंत में वह किसी मंजिल पर, किसी गंतव्य पर नहीं पहुंच पाता है। इसलिए मैंने ठीक समझा कि कुछ उन बातों के संबंध में आपसे कहूं, जो सत्य को पाने के लिए भूमिका और सीढ़ियां बन सकती हैं।

सबसे पहली बात तो यह कहनी जरूरी है कि हममें से बहुत कम लोग होंगे जो सत्य को पाना चाहते हों। और जो नहीं पाना चाहते उन्हें इस दुनिया में कोई भी सत्य देने में समर्थ नहीं हो सकता है। चाहे आपके करीब से महावीर निकल जाएं, और चाहे आपके पड़ोस में क्राइस्ट और कृष्ण ठहर जाएं तो भी, अगर आपके भीतर प्यास नहीं है तो सत्य आपको उपलब्ध नहीं हो सकता है। अगर मैं एक कुएं पर भी खड़ा हो जाऊं और मुझे प्यास न हो, तो कुएं का पानी मुझे दिखाई नहीं पड़ेगा। पानी उसे दिखाई पड़ता है जिसे प्यास हो। पानी केवल उसे दिखाई पड़ता है जिसे प्यास हो, जिसे प्यास न हो उसे पानी भी दिखाई नहीं पड़ता। और पानी की सार्थकता भी उसे ही ज्ञात होगी जिसके पास प्यास है। और जितनी गहरी प्यास होगी, पानी में उतना ही अर्थ प्रकट हो जाता है।

सत्य के साथ भी यही है। जो जानते हैं उनका अनुभव यह है कि हम सारे लोग सत्य के करीब खड़े हैं। जो जानते हैं उनकी प्रतीति यह है कि हम सारे लोग सत्य के कुएं पर खड़े हैं, लेकिन हममें प्यास नहीं है। और जिसे प्यास नहीं है उसे उपलब्धि नहीं हो सकती। जो हमारी बिल्कुल पीठ के पीछे हो, जो हमारे हाथ के करीब हो, लेकिन अगर प्यास न हो, वह भी हमें दिखाई नहीं पड़ेगा।

सत्य बहुत निकट है, सत्य से ज्यादा निकट और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन प्यास न हो, तो सत्य सबसे ज्यादा दूर हो जाता है। प्यास न हो, तो सत्य और हमारे बीच इतना बड़ा फासला हो जाता है जिसे पार करना मुश्किल है, और प्यास हो तो कोई फासला नहीं रह जाता। और अगर प्यास पूरी तरह पैदा हो जाए, तो सत्य हाथ बढ़ाते ही उपलब्ध हो जाता है।

एक गांव में जहां कोई हजार लोग रहते थे, एक बहुत बड़े सदगुरु का निकलना हुआ था। उस गांव के एक व्यक्ति ने आकर उनको कहाः आप इतने लोगों को सत्य के संबंध में समझाते हैं, इतने लोगों को मोक्ष के संबंध में बताते हैं, कितने लोगों को मोक्ष उपलब्ध हुआ है? कितने लोगों को सत्य मिला? उस फकीर ने कहाः एक काम करो, कल सुबह तुम आना और फिर हम उत्तर देंगे। वह कल सुबह आया, उस फकीर ने कहाः तुम गांव में जाओ और सारे लोगों से पूछना कि कौन व्यक्ति क्या चाहता है? और एक फेहरिस्त बना कर मेरे पास आ जाना। वह

आदमी गांव में गया, हजार लोग वहां रहते थे। उसने सुबह से सांझ तक एक-एक आदमी को मिल कर पूछा कि तुम्हारी आकांक्षा क्या है? और सांझ को वह पूरी फेहरिस्त बना कर आया। उस फकीर ने पूछाः इस फेहरिस्त में कोई आदमी सत्य को भी चाहता है? उसमें एक भी आदमी नहीं था जो सत्य को चाहता हो! धन को चाहने वाले थे, यश को चाहने वाले थे, पुत्र-पुत्रियों को चाहने वाले थे, और सारे चाहने वाले थे, उन हजार लोगों में से एक ने भी नहीं लिखा था कि मैं सत्य को चाहता हूं। तो उस फकीर ने कहाः अगर लोग सत्य को न चाहते हों, तो सत्य उन्हें दिया नहीं जा सकता है। सत्य किसी को भी दिया नहीं जा सकता है। स्मरण रखिए, मैं आपको पानी तो दे सकता हूं, लेकिन प्यास कैसे दूंगा? और पानी अगर दे भी दूं और प्यास न हो तो उस पानी में अर्थ क्या होगा?

दुनिया में बहुत लोगों ने जिन्होंने जाना है, अपनी बात कही है। लेकिन उनकी बात पानी है, आपमें प्यास हो तो उसमें अर्थ होगा, आपमें प्यास न हो तो व्यर्थ हो जाएगी।

सत्य की जिज्ञासा में पहली शर्त हैः प्यास होनी चाहिए। और प्यास का पता कैसे चलेगा? अगर एक मरुस्थल में मुझे छोड़ दिया जाए, सूरज जोर से तपता हो, और पानी कहीं दिखाई न पड़ता हो, और मैं प्यास से तड़फने लगूं, मैं प्यास से इतना व्याकुल हो जाऊं कि कोई आकर मुझसे कहे कि हम पानी तो देते हैं, लेकिन पानी जीवन के मूल्य पर देंगे। हम पानी देंगे लेकिन बाद में जीवन ले लेंगे; तो मैं पानी लेना पसंद करूंगा या जीवन बचाना? मैं पानी ले लूंगा और जीवन खो दूंगा।

प्यास तब पूरी होती है जब हम उसके लिए जीवन भी देने को तैयार हों। तो अकेली प्यास ही काफी नहीं है, इतनी प्यास कि हम उसके लिए सब कुछ देने को तैयार हों, तो सत्य उपलब्ध होता है।

सत्य बहुत सस्ती बात नहीं है। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह सस्ता नहीं हो सकता। और सत्य, एक अर्थ में किसी भी मूल्य पर नहीं पाया जा सकता है, सिवाय जीवन दिए।

महावीर के समय में बिंबिसार नाम के राजा ने उनसे जाकर कहा था, बिंबिसार ने महावीर को कहा, मैं सत्य को उपलब्ध करना चाहता हूं, और आप जानते हैं, मैंने दूर-दूर तक की यात्राएं की हैं, और दूर-दूर तक मैंने विजय की पताकाएं फहरा दी हैं। जहां तक मुझे ख्याल जाता है, वहां तक मेरा राज्य फैल गया है। तो आप मेरी शक्ति से तो परिचित ही होंगे? अब मैं सत्य भी पाना चाहता हूं। मैंने सुना है अकेली संपत्ति और अकेले राज्य के पा लेने से शांति नहीं मिलती, तो अब मैं सत्य भी पाना चाहता हूं, तो मुझे क्या देना होगा? सत्य पाने के लिए मुझे क्या देना होगा?

महावीर ने कहाः तेरे ही गांव में एक अत्यंत साधारण मनुष्य रहता है, तू उसके पास जा और उस मनुष्य से कहना कि अपना एक ध्यान का जो पुण्य है वह मुझे दे दे, एक ध्यान का पुण्य, एक सामायिक का पुण्य, एक समाधि का पुण्य; और जो मूल्य वह मांगे दे देना।

वह बिंबिसार गया, उस साधारण नागरिक से उसने कहा, जो चाहते हो ले लो, मुझे तुम्हारे एक ध्यान का पुण्य चाहिए। वह बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, बड़ी मुश्किल है, मैं अपने प्राण दे सकता हूं, लेकिन अपना ध्यान नहीं दे सकता। इसलिए नहीं कि मैं नहीं देना चाहता, इसलिए कि देने का कोई उपाय नहीं है। मैं अपने प्राण दे सकता हूं, लेकिन अपना ध्यान नहीं दे सकता। इसलिए नहीं कि नहीं देना चाहता, बल्कि इसलिए कि देने का कोई उपाय नहीं है।

मैं आपको प्रेम तो कर सकता हूं, लेकिन अपना प्रेम नहीं दे सकता। यानी मैं वह क्षमता नहीं दे सकता आपको कि आप प्रेम करने लगें। कोई व्यक्ति अपने आनंद की ज्योति तो आपके ऊपर फेंक सकता है, लेकिन अपना आनंद नहीं दे सकता कि आप आनंदित हो जाएं। दीया आपको प्रकाशित तो कर सकता है, लेकिन आपके

भीतर जाकर दीया नहीं बन सकता। कुछ है जो नहीं दिया जा सकता। और जो नहीं दिया जा सकता वही मूल्यवान है। जो दिया जा सकता है, वह दो कौड़ी का है।

इस जगत में दो ही तरह की चीजें हैं, एक वे चीजें हैं जो दी जा सकती हैं, जो बाजार में बेची जा सकती हैं, जिनको खरीदा जा सकता है, जिनको बेचा जा सकता है। जिनका कोई मूल्य निर्धारित हो सकता है, कमोडिटीज, सामग्रियां हैं, वस्तुएं हैं। और एक और तरह की भी चीजें हैं, जिनका कोई बाजार नहीं हो सकता, जिनको दिया नहीं जा सकता, जिनको बांटा नहीं जा सकता, जिनको खरीदा नहीं जा सकता। बस दो ही तरह की चीजें हैं दुनिया में। जो पहली तरह की चीजों में अपने जीवन को गंवा देता है, वह बिल्कुल व्यर्थ गवां देता है। जो दूसरी तरह की चीजों को पैदा करने करने में लगा है, वह संपदा को उपलब्ध होगा, वह संपत्ति को उपलब्ध होगा, उसे कुछ मिलेगा। उसे कोई आधार मिलेगा, और कोई आनंद और कोई आलोक उपलब्ध होगा। पहली तरह की चीजों को हम वस्तुएं कहते हैं, दूसरी तरह की चीजों को हम अनुभूतियां कहते हैं।

धर्म का संबंध वस्तुओं से नहीं अनुभूतियों से है। धर्म का संबंध अनुभूतियों से है। अनुभूतियां भी कमाई जाती हैं। और उस छोटे से साधक ने बिंबसार को कहाः मैं अपने प्राण दे दूं, लेकिन अपनी अनुभूति कैसे दूं? तुम महावीर से ही जाकर पूछना कि उसका क्या मूल्य है? मैं मूल्य कैसे बताऊं?

बिंबिसार वापस लौट गया, उसे समझ न आया, उसे ख्याल न आया।

कुछ बातें ऐसी हैं जो शक्ति से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। शक्ति उसके पास बहुत थी, बहुत उसके पास शक्ति थी, उसने बड़े राज्य जीते थे। और तब उसे पता पड़ा कि राज्यों के जीतने से भी कोई बड़ी जीत हो सकती है, जिनको कि जिसने राज्यों को जीता वह भी जीतने में समर्थ नहीं मालूम होता। और उसे लगा कि मेरी सारी शक्ति व्यर्थ है, एक व्यक्ति के ध्यान को मैं नहीं छीन सकता।

ऐसा ही फिर दुबारा हुआ। एक दूसरा बादशाह भारत आया--सिकंदर। जब वह भारत से वापस लौटने लगा, तो उसके मित्रों ने उससे यूनान में कहा था, एक संन्यासी को भारत से लेते आना, ताकि हम देखें कि संन्यासी कैसा होता है? और सारी चीजें तुम लूट कर लाओगे, एक संन्यासी को भी लूट लाना। सिकंदर जब सारी लूट का सामान लेकर लौटने लगा, और सैकड़ों मील उसका काफिला था, जिसमें जो भी बहुमूल्य उसे भारत में उसे दिखाई दिया उसे वह लाद कर ले जा रहा था, तब अंतिम सीमा पर उसे याद आया, एक संन्यासी रह गया, संन्यासी का कोई ख्याल ही नहीं आया। उसने गांव के लोगों को बुला कर पूछा, यहां कोई आस-पास संन्यासी है? मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहता हूं।

गांव में एक वृद्ध ने कहाः संन्यासी तो बहुत मिल जाएंगे, लेकिन जिनको तुम लूट सको, जिनको तुम ले जा सको, समझना कि वह संन्यासी नहीं है। क्योंकि संन्यासी को ले जाना मुश्किल है।

सिकंदर बोलाः तुम्हें मेरी ताकत का पता नहीं, मैं अगर हिमालय को कहूं कि चलो, तो हिमालय को मेरे साथ चलना होगा। अगर मैं इस पूरे मुल्क को कहूं चलो यूनान, तो इस पूरे मुल्क को एक कोने से दूसरे कोने तक चलना होगा। वह वृद्ध हंसने लगा, उसने कहाः तुम्हें संन्यासी का पता नहीं, अभी तुमने वे चीजें जीती हैं जो हार जाती हैं, अभी तुम्हें उस आदमी से मुकाबला नहीं हुआ जो हार जानता ही नहीं।

खैर, खोज की गई और थोड़े ही फासले पर एक पहाड़ और नदी के किनारे एक संन्यासी का पता चला, जो वर्षों से वहां था। सिकंदर ने अपने सिपाही भेजे, उन सिपाहियों ने जाकर उस साधु को कहाः महान सिकंदर की आज्ञा है कि हमारे साथ चलो यूनान। बहुत सुख-सुविधा तुम्हें देंगे, कोई अड़चन न होगी। कोई, कोई किसी तरह की तुम्हें परेशानी न होगी, शाही मेहमान तुम रहोगे।

वह संन्यासी बोलाः तुम्हें शायद पता नहीं, संन्यासी हम उसको कहते हैं जिसने सिवाय अपने और सबकी आज्ञाएं मानना छोड़ दिया है। संन्यासी ने कहाः तुम्हें शायद पता नहीं, संन्यासी हम उसे कहते हैं जिसने सिवाय अपने और सबकी आज्ञाएं मानना छोड़ दिया है। सिकंदर को कहना, यहां कोई आज्ञा प्रवेश नहीं कर सकती। वे सिपाही बोलेः तुम्हें सिकंदर का शायद पता नहीं है, अगर तुम ऐसे न गए, तो तलवार के बल ले जाए जाओगे। उस संन्यासी ने कहाः तुम सिकंदर को ही भेज दो। और सिकंदर नंगी तलवार लेकर गया, और उसने उस संन्यासी को कहाः क्या विचार है? मेरे पीछे चलते हैं? वह संन्यासी बोलाः हम तो केवल अपने ही पीछे चलने के आदी हैं। सिकंदर ने कहाः इसका परिणाम बुरा होगा। उस संन्यासी ने कहाः जिसको तुम चोट पहुंचा सकते हो, उसका हम त्याग कर चुके हैं। संन्यासी ने कहाः जिसको तुम चोट पहुंचा सकते हो, उसका हम त्याग कर चुके हैं। सिकंदर ने कहां परिणाम मृत्यु होगा। उस संन्यासी ने कहाः जो मर जाता है, उसे हमने समझ लिया, वह हमारा होना नहीं है। और जिसे तलवार काट सके और जिसे आग जला सके, वह हमारी सत्ता नहीं है, हम उससे पीछे हट गए हैं। और अगर तुम्हारी मर्जी हो तो काटो, तुम भी देखोगे सिर को गिरते हुए और हम भी देखेंगे। उसने कहाः तुम भी देखोगे सिर को गिरते हुए और हम भी देखेंगे। क्योंकि जो हमारा प्राण है, जो हमारी आत्मा है, वह इसके पीछे है, और इसकी साक्षी हो सकती है। सिकंदर की म्यान उठी, उसकी तलवार म्यान के भीतर चली गई। उसने अपने सैनिकों से कहाः वापस लौट चलो, संन्यासी को ले जाना कठिन है। उस संन्यासी ने चलते वक्त कहाः संन्यासी को मार डालना तो आसान है, संन्यासी को जीतना संभव नहीं है।

सिकंदर जब वापस पहुंचा, उसके मित्रों ने पूछा, संन्यासी को लाए हैं? वह बोलाः सारा संसार ला सकता था, संन्यासी को लाने की बात मत करो। और एक दफा एक जगह पर एक साधारण नंगे फकीर के पास जाकर पता चला कि मेरी सारी शक्ति दो कौड़ी की है। ऐसा ही बिंबिसार को पता चला उस दिन कि उसकी सारी शक्ति व्यर्थ है। संसार की वस्तुएं शक्ति से पाई जाती हैं, और जिनको मैंने अनुभूतियां कहीं वह शक्ति से नहीं, शांति से पाई जाती हैं। वस्तुएं शक्ति से उपलब्ध होती हैं, अनुभूतियां शांति से उपलब्ध होती हैं। जिसकी शक्ति पर आस्था है, वह केवल वस्तुओं को इकट्ठा कर पाएगा, और जिसकी शांति पर आस्था है, वह अनुभूतियों को भी उपलब्ध हो जाता है।

स्मरण रखें, इसका अर्थ हुआ कि शांति शक्ति से भी बड़ी शक्ति है। इसका अर्थ हुआ कि शांति शक्ति से भी बड़ी शक्ति है। सबसे बड़े शक्तिशाली वे हैं जिन्हें आप अपनी शक्ति दिखाने के लिए प्रलोभित नहीं कर सकते। सबसे बड़े शक्तिशाली वे हैं जिन्हें आप शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए उत्तेजित नहीं कर सकते। सबसे बड़े शक्तिशाली वे हैं जो उस सीमा तक शांत हो गए हैं कि उन्हें अशांत करने का उपाय संसार के हाथ में कोई भी नहीं रह जाता है। शांति अदभुत शक्ति है, एक बहुत दूसरे लोक की शक्ति है। और शांति भूमिका है सत्य को पाने की। जो शांत नहीं है वह सत्य को नहीं पा सकता है।

तो पहली बात है, सत्य को पाने की प्यास चाहिए।

दूसरी बात है, सत्य को पाने के लिए शक्ति की निष्ठा छोड़ कर, शांति की श्रद्धा उत्पन्न होनी चाहिए।

शक्ति की निष्ठा हम सबके भीतर है, वासनाएं शक्ति मांगती है, आत्मा शांति मांगती है। और जो जितना शक्ति को जुटाने में लगा है, वह स्मरण रखे, वह उतना ही आत्मा से दूर होता चला जाएगा। और जो जितना शांति को जुटाता है, वह उतना ही आत्मा के करीब आने लगता है।

शांति कैसे जुटाई जा सकती है? शांति कैसे पैदा हो सकती है? शांति के पैदा करने के कोई चार सूत्र मैं आपसे कहना चाहूंगा। जो व्यक्ति शांत होना चाहता हो, जो उस अदभुत शक्ति को उत्पन्न करना चाहता हो, जिसको मैं शांति कह रहा हूं, जिसे अनुभूतियों के जगत में प्रवेश करना हो वस्तुओं के जगत को छोड़ कर,

जिसके जीवन में वस्तुओं की कामना छोड़ कर अनुभूतियों की कामना उत्पन्न हो गई हो, जिसकी वासना ने बाहर की दौड़ छोड़ कर भीतर का रुख अपना लिया हो।

आज सांझ को मैं लेटा था, और कुछ मित्र मेरे पास थे, उनको मैं एक कहानी कहा। एक अदभुत कहानी मैं उनको कहता था, वह मुझे स्मरण आई। एक बहुत बड़े मुसलमान बादशाह के पास एक व्यक्ति ने जाकर उसके एक मित्र ने जाकर कहाः मुझे आपका एक घोड़ा चाहिए। उस राजा ने अपने अस्तबल में जाकर कहाः सबसे जो बढ़िया घोड़ा है, वह मैं तुम्हें देता हूं; वह जो पीला घोड़ा है, उसे तुम ले लो। उसे ले जाओ। वह आदमी बोलाः उस घोड़े को ले जाने में मैं समर्थ नहीं हूं। उस घो.ड़े के बाबत मैंने सुन रखा है, वह घोड़ा बहुत खतरनाक है, क्योंकि जब उस पर कोई सवार बैठता है तो वह घोड़ा उलटा चलता है। वह पीछे की तरफ भागता है, ऐसे घोड़े पर बैठ कर कोई कहीं भी नहीं पहुंच सकता। वह राजा बोलाः जो समझदार हैं, वे इस घोड़े पर भी बैठ कर वहां पहुंच जाएंगे जहां पहुंचना चाहते हैं। उस आदमी ने कहाः लेकिन कैसे? उस राजा ने कहाः वे अपने घर की तरफ घोड़े की पूंछ कर लेंगे। उन्हें जहां जाना है वे वहां घोड़े की पूंछ कर लेंगे और पहुंच जाएंगे।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं, मनुष्य के भीतर जो वासना है वह वही घोड़ा है जो उलटा भागता है। जहां आप जाना चाहते हैं उससे उलटा जाता है। लेकिन जो समझदार हैं वे वासनाओं को उलटा कर लेते हैं, और उसकी पूंछ आत्मा की तरफ कर लेते हैं। शक्ति की जो खोज है, यह उस घोड़े का मुंह गंतव्य की ओर रखना है, शांति की जो खोज है घोड़े को उलटा कर लेना है। जो लोग वस्तुओं की खोज और तलाश में लगे हैं, अगर वे उसी खोज और तलाश को अनुभूतियों की दिशा में परिवर्तित कर दें, उनका जीवन बदल जाएगा। वे साधारण मनुष्यों से परिणित होकर असाधारण दिव्य जीवन में परिणित हो जाएंगे। तब वे पार्थिव न रह कर भागवत हो जाएंगे। तब वे पदार्थों की दुनिया के हिस्से न होकर आत्मा की दुनिया के, आत्मा के जगत के हिस्से हो जाएंगे।

यह चार सूत्रों से संभव हो सकता है। उन चार सूत्रों को मैं आपसे कहूं।

पहला सूत्र हैः उस व्यक्ति के लिए जो शांत होना चाहता है। और वे सूत्र वही हैं कि अगर उनके विपरीत उपयोग करें तो वे ही सूत्र शक्ति के स्रोत हो जाएंगे। जिस व्यक्ति को शक्ति पानी है, उसका सूत्र हैः अहंकारपूर्ण जीवन। जो व्यक्ति शक्ति की खोज कर रहा है, उसे अपनी अहमता को जगाना होगा। उसकी जितनी अहमता प्रकट होगी, जितना ईगो, जितना दंभ प्रगाढ़ होगा, उतनी शक्ति को वह इकट्ठा कर सकेगा। अगर किसी व्यक्ति को शक्ति खोजनी है, तो उसे अहंकार का पोषण करना होगा और सोए अहंकार को जगाना होगा। जितना तीव्र अहंकार होगा उतनी शक्ति के जगत में विजय की जा सकती है। इसलिए जो बड़े अहंकारी थे, इतिहास उन्हें बड़ा विजेता कहता है। इसलिए जो बड़े अहंकारी थे, इतिहास उन्हें यशस्वी कहता है। इसलिए जो बड़े अहंकारी थे, वे बड़े पदों पर पहुंचे, बड़ी प्रतिष्ठा पर, बड़े राज्यों पर। लेकिन अहंकार की दौड़ का खतरा एक ही है, अहंकार मृत्यु के सामने गल जाता और नष्ट हो जाता है। और मृत्यु सारी खोल को उघाड़ कर रख देती है कि शक्ति की दौड़ व्यर्थ हो गई, क्योंकि मृत्यु अहंकार को ही छीन लेती है। जिस अहंकार के केंद्र पर सारी शक्तियां इकट्ठी होती हैं वह उस केंद्र के टूटते ही विलीन हो जाती हैं। इसलिए जितना शक्तिशाली मनुष्य होगा, उतना ही मृत्यु से डरता है। इसलिए जितने बड़े पद पर कोई व्यक्ति होगा, उतना ही मृत्यु से भयभीत होता है। जितनी ही उसकी अहमता का विस्तार होगा, उतनी ही मृत्यु का भय गहरा उसके भीतर हो जाता है। इसके विपरीत जो शांति का खोजी है, उसे निर-अहंकारचर्या को उत्पन्न करना होता है। उसे अपने भीतर अहंकार के जितने भी रूप पल्लवित होते हों, उन्हें पानी देना बंद कर देना होता है। और जो बीज अंकुरित होते हैं उन्हें रोशनी देना बंद कर देना होता है। उसे अपने भीतर स्पष्ट बोध रखना होता है कि चर्या अहंकार के प्रगाढ़ करने का माध्यम न बन जाए। और हम इस तरह न जीएं कि हमारा अहंकार निरंतर प्रगाढ़ से प्रगाढ़ होता जाए। उसे अहंकार को क्षीण और विलीन करना होता है। अहंकारपूर्ण चर्या शक्ति की दिशा में ले जाती है, अहंकार-शून्य चर्या शांति की दशा में।

जो शांति के लिए उत्सुक हैं उन्हें अहंकार को छोड़ने के लिए राजी होना होता है। और क्या मैं आपसे कहूं अहंकार से बड़ी क्या कोई अशांति है? क्या अहंकार से बड़ी कोई अशांति है? अपने भीतर खोजें, उठने में, बैठने में, जागने में, देखें क्या अहंकार से गहरी कोई अशांति है? वहां दिखाई पड़ेगा, जितना अहंकार है उतनी ही अशांति है। जितना अहंकार तीव्र है, उतनी तीव्र अशांति है। जो निर-अहंकारी हैं, उन्हें अशांत होने का कारण ही विलीन हो जाता है।

बुद्ध एक गांव से निकले थे, कुछ लोगों ने उन्हें आकर गालियां दीं, अपमान किया। जब वे गालियां दे चुके और अपमान कर चुके, तो बुद्ध ने कहाः मित्रो, क्या मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव पहुंचना है। क्या तुम्हारी बात पूरी हो गई? क्या तुम यह तो न समझोगे कि मैंने तुम्हारी बात नहीं सुनी और जल्दी चला गया? लोगों ने कहाः क्या आप पागल हैं? ये बातें न की हमने, गालियां दी हैं और अपमान किया है। बुद्ध ने कहाः जिस दिन से अहंकार गया, तुम गाली दो, लेकिन मुझको लगना मुश्किल है। क्योंकि जहां लगती थी, वहां तुम नहीं लगा सकते थे, वह मेरा अहंकार था जो लगाता था। गाली फेंकना तुम्हारे हाथ में है, उसको गाली का पड़ना मेरे ऊपर मेरे हाथ में है। मेरे पास वह केंद्र तो चाहिए जहां वह चुभ जाए। वह केंद्र अहंकार है, जहां सारे जगत की गालियां चुभ जाती हैं, जहां सारे जगत के अपमान चुभ जाते हैं, वह स्थल तो मेरे पास चाहिए। बुद्ध ने कहाः क्षमा करें, तुम बहुत गलत आदमी को गाली देने आ गए। बिल्कुल अग्राहक को, नॉन-रिसेप्टिव आदमी के पास आ गए हो। तुमने समय व्यर्थ खोया। और अब भूल मत करना, ऐसी गाली देनी हो तो उसे देना जो गाली लेता हो। बुद्ध ने कहाः दस-बारह वर्ष हुए हम गाली लेने में असमर्थ हो गए। बहुत दुखी हैं और क्षमा चाहते हैं, इतना समय तुम्हारा व्यर्थ खराब किया। और हमें जल्दी कहीं पहुंचना है, इसलिए इस बातचीत में अब ज्यादा भी नहीं पड़ सकते। जिसे कहीं पहुंचना हो वह व्यर्थ की बात में ज्यादा नहीं पड़ सकता है। तो बुद्ध ने कहाः आज्ञा दें कि मैं जाऊं। और स्मरण रखें, आगे ऐसे गलत आदमी को गाली मत देना।

वह जो अहंकार का केंद्र है, वह जो स्थल है, वह जो मैं का भाव है, वह सारी अशांति का कारण है। और जितनी अशांति होती है आदमी में उतना ही वह शक्ति का इच्छुक होता है, क्योंकि शक्ति से वह अशांति की कमी को भरना चाहता है, शक्ति से वह शांति की कमी को भरना चाहता है, वह यह धोखा देना चाहता है अपने को कि मेरी शांति नहीं है, कोई हर्ज नहीं, मेरे पास शक्ति है। और शक्ति से मैं सप्लीमेंट कर लूंगा, पूर्ति कर लूंगा उस शांति की जो कि नहीं है। लेकिन यह पूर्ति नहीं हो सकती, परमात्मा के जगत में कोई धोखा नहीं चल सकता है। अनुभूतियों के जगत में कोई धोखा नहीं दिया जा सकता। हम धोखा दूसरों को दे सकते हैं, अपने को धोखा देने का कोई उपाय आज तक ईजाद नहीं हो सका है। वहां दो और दो चार ही होते हैं, वहां दो और दो के पांच या तीन होने का कोई रास्ता नहीं है।

तो कोई कितनी ही शक्ति इकट्ठी कर ले, अशांति उतनी ही बनी रहेगी। और शांति की पूर्ति नहीं हो सकती, हो भी कैसे सकती है? शक्ति अशांति का लक्षण है, अशांति की खोज है। शांति तो बड़ी अलग बात है। उसकी पूर्ति शक्ति से नहीं हो सकती है।

तो पहला सूत्र है शांति के साधक के लिए कि वह अहंकार-शून्य चर्या को अपनाए। कैसे अपनाएगा? अहंकार-शून्य चर्या को कैसे अपनाएगा? बहुत लोग चेष्टा करके अपना लेते हैं, बिना समझे, बिना जाने। एक आदमी हो सकता है--कि यह सोच कर कि अहंकार छोड़ देना है, तो शक्ति छोड़ दे, राज्य छोड़ दे। समझ लें बड़ा राजा हो, सम्राट हो, वह यह सोच कर कि शक्ति छोड़ देनी है और शांत हो जाना है, अहंकार-शून्य चर्या उत्पन्न करनी है तो मैं राज्य छोड़ दूं। तो वह राज्य छोड़ कर चला जाएगा। लेकिन अगर यह राज्य अज्ञान में छोड़ा गया हो, तो उसके मन में यह भाव उत्पन्न होने लगेगा, मैं, मैं वह व्यक्ति हूं जिसने इतने बड़े राज्य को छोड़ा। और तब राज्य पाने से जो अहंकार पोषित होता था, वही अहंकार राज्य छोड़ने से भी पोषित होता रहेगा। उसका त्याग

व्यर्थ हो जाएगा। अज्ञान में किया गया त्याग कचरे में फेंके गए हीरे की तरह है, उसका कोई मतलब नहीं। अज्ञान में किया गया त्याग कोई अर्थ नहीं रखता। क्योंकि जिस चीज की पूर्ति भोग से होती थी, उसी चीज की पूर्ति त्याग से होने लगती है।

मैंने सुना है, एक मुसलमान फकीर एक बादशाह के साथ बचपन में मित्र था और एक मदरसे में वे पढ़े। बादशाह बड़ा हुआ और वह राजा के पद पर बैठा, और वह फकीर हो गया दूसरा मित्र। उसकी बड़ी ख्याति फैली, वह नग्न रहने लगा, उसने सब वस्त्र छोड़ दिए। उसने सारी वस्तुएं छोड़ दीं, दूर-दूर तक हजारों लोग उसके पैरों में सिर झुकाने लगे। हवाओं में उसकी खबरें उड़ गईं। और उसकी सुगंध अनेक-अनेक देशों तक पहुंच गई। फिर वह राजधानी में आया।

राजा ने सोचा, मेरा मित्र आता है, तो उसके स्वागत की व्यवस्था की, सारे नगर को सजाया, फूलों से और दीयों से, और रास्तों पर कालीन बिछाए, ताकि वह अपने फकीर मित्र का स्वागत कर सके। रास्ते में फकीर को खबर मिली, राजा अपनी धन-दौलत दिखाने के लिए आयोजन कर रहा है। और वह राजा तुम्हारा मित्र तुम्हें हतप्रभ करना चाहता है कि तुम्हें दिखा दे कि तुम क्या हो, आखिर एक नंगे फकीर! और मैं क्या हूं, यह भी तुम देख लो! वह फकीर बोलाः ऐसा है तो हम भी दिखा देंगे कि हम क्या हैं। और जिस संध्या उसका आगमन हुआ, सारी राजधानी सजी थी, राजा स्वयं उसे लेने गया था। उसके सारे सेनापति और सारे दरबारी लेने गए थे। बहुमूल्य कालीन उस मार्ग पर बिछाए गए थे। शाही स्वागत था। वह नंगा फकीर आया और लोग देख कर हैरान हुए, अभी तो कोई वर्षा भी न थी, लेकिन उसके पैर घुटनों तक कीचड़ से भरे थे। वह उन बहुमूल्य कालीनों पर कीचड़ भरे पैर से चलने लगा। जब वह महल की सीढ़ियां चढ़ता था, तो राजा ने पूछा, क्या मैं यह पूछने की धृष्टता करूं कि यह इतने पैर कीचड़ से कैसे भर गए? अभी तो कोई वर्षा के दिन नहीं, और कहीं रास्ते खराब नहीं है। यह इतने पैर कीचड़ से कैसे भर गए? वह फकीर बोलाः तुम अपनी अमीरी दिखाना चाहते हो रास्ते पर कालीन बिछा कर, हम अपनी फकीरी दिखाते हैं कालीनों पर कीचड़ भरे पैर चल कर। वह राजा बोलाः तब तो मुझमें और तुममें कोई अंतर नहीं है। मैं सोचता था कि तुम बदल गए होंगे, हम पुराने ही मित्र हैं, कोई बदलाहट नहीं हुई, वह अहंकार वहीं का वहीं बैठा हुआ है।

एक नंगे से नंगे फकीर में अहंकार उतना ही हो सकता है। इसलिए कोई इस धोखे में न रहे कि शक्ति को मात्र छोड़ देने से ही निर-अहंकार हो जाएगा। निर-अहंकार तो वह होगा जिसकी शक्ति ज्ञान से विसर्जित होती है, जो ज्ञान से छोड़ता है। ज्ञान से अहंकार कैसे छूटेगा? ज्ञान से अहंकार छूटता है, और अकेले ज्ञान से छूटता है। कभी यह विचार आपने नहीं किया होगा कि यह आपके भीतर जो मैं की तरह बोलता है, क्या है? यह कौन है जो मैं है? यह सच में कोई इकाई है या एक झूठा बोध है। यह बिल्कुल झूठा बोध है, इसकी कोई इकाई नहीं है। कभी एकांत में आंख बंद करके भीतर उसे खोजें जो मैं है, आपको मैं का कोई स्वर सुनाई नहीं पड़ेगा। मैं का स्वर इसलिए सुनाई पड़ता है कि निरंतर समाज में घिरे रहने से, और निरंतर भाषा के द्वारा मैं का उपयोग करने से, और निरंतर तू का उपयोग करने से, निरंतर दूसरे मैं, दूसरी ईगोज, दूसरे अहंकारों के बीच घिरे रहने से आपको भी लगता है, मैं हूं।

बचपन से एक नाम दे दिया जाता है, और इस जगत में सबसे बड़ा खतरा उसी से हो जाता है। हर आदमी को एक नाम दे दिया जाता है। जब कि किसी आदमी का कोई नाम नहीं है। नाम मनुष्य की सबसे खतरनाक ईजादों में से एक है, उसके बिना चल नहीं सकता था, इसलिए करनी पड़ी। लेकिन किसी आदमी का कोई नाम नहीं है। स्मरण रखें, नाम बिल्कुल झूठी बात है। और अगर कोई आपसे आपका नाम छीन ले, तो क्या आपको पता चलेगा मैं, आपका मैं आधा टूट जाएगा।

मेरे पास एक वृद्ध आते थे, उन्होंने कुछ मेरे पास आकर ध्यान की साधना शुरू की। आठ-दस दिन बाद वे नहीं आए। मैंने पुछवाया कि क्या हुआ? मैं उनके घर गया कि क्या बात हो गई? वे मुझसे बोले कि कृपा करके आप मेरे घर न आएं, और न मैं आपके घर आऊंगा, अपना संबंध समाप्त हुआ। मैं बोलाः क्या दिक्कत हो गई? क्या अड़चन हो गई?

वे बोले कि आपके उस प्रयोग को करने से बहुत खतरा हुआ। एक रात मैं उस प्रयोग को करके उठा और मैं अपना नाम भूल गया। और मैं बहुत घबड़ाने लगा। और मैं इतना घबड़ाया, इतनी बेचैनी मुझे कभी न हुई थी, सर्द रात थी और मैं पसीने से चूर-चूर हो गया। और मुझे खोजूं मेरा नाम न मिले। और मैंने कहा, यह क्या पागलपन हो रहा है? अगर यह हो गया तो मैं पागल हो जाऊंगा। मैं आपसे कहता हूं, अभी आप पागल हैं जब तक आपको अपना नाम असली मालूम होता है, और जब आपको पता चल जाए कि नाम बिल्कुल नकली है, आप पागलपन के बाहर होंगे।

यह बिल्कुल झूठी बात है, किसी का कोई नाम नहीं है। नाम बिल्कुल कामचलाऊ बात है। लेकिन हम उसे असली समझ लेते हैं। अगर मेरे नाम को कोई गाली दे, तो मुझे लगेगा, मुझे गाली दी है। अगर मुझे यह पता चल जाए कि मेरा कोई नाम नहीं है, तो मैं समझूंगा कि किसी नाम को गाली दी है। मैं अलग खड़ा रह जाऊंगा, गाली नाम पर पड़ेगी। गाली की चोट मुझे इसलिए लगती है क्योंकि नाम के साथ मेरी आइडेंटिटी है, मेरा तादात्म्य है, मेरा संबंध है, मुझे लगता है, मेरा नाम है। मेरे नाम की वजह से वह दुख और पीड़ा है। तो एक तो मैं आपसे यह कहूं कि जिसे अहंकार से मुक्त होना है, उसे जानना होगा कि उसका कोई नाम नहीं है। जब उसका कोई नाम ले तो उसे जानना चाहिए कि यह कामचलाऊ बात कह रहा है। यह भ्रम पैदा नहीं करना चाहिए कि मुझे बुला रहा है। यह भ्रम इतना गहरा हो जाता है कि जागते तो जागते नींद में भी आप अपने नाम को नहीं भूलते। यहां कितने लोग सोए हों और मैं कोई एक नाम लेकर बुलाऊं, तो वह आदमी उठ आएगा बाकी लोग सोए रहेंगे। अगर आपके घर के सामने कोई किसी दूसरे का नाम चिल्लाता रहे तो आपको नींद में सुनाई नहीं पड़ेगा, आपका नाम चिल्लाए तो सुनाई पड़ जाएगा।

वह नाम का पागलपन केवल आपके जागने में नहीं है, आपके गहरे नींद तक में प्रविष्ट हो गया है। वह आपके प्राणों में धीरे-धीरे प्रविष्ट होता जाता है। और जैसे-जैसे आप उम्र में बड़े होते जाते हैं और आपके अनुभव बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे नाम भीतर घुसने लगता है। और नाम की जितनी जड़ें आपके भीतर फैल जाएंगी उतना ही अहंकार को तोड़ना मुश्किल हो जाएगा। जिसे अहंकार को तोड़ना है उसे नाम से मुक्त होना होगा। उसे यह स्मरणपूर्वक ध्यान रखना होगा कि नाम की गहराइयां मेरे भीतर न बढ़ें। उसे ऐसे मौके देने होंगे, अभी तो सोते में नाम सुनाई पड़ जाता है, उसे ऐसे मौके देने होंगे कि जागा हुआ हो और कोई नाम ले और उसे पता न चले कि मेरा लिया है।

अमरीका में एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ, एडीसन। पहले महायुद्ध में वहां कुछ राशन की व्यवस्था करनी पड़ी, अमरीका में। एडीसन तब बहुत गरीब आदमी था। उसके पास नौकर भी नहीं थे। और उसके घर में, और उसके और जो साथी थे, कोई बीमार था साथी, उसे खुद राशन लेने दुकान पर जाना पड़ा। उसने अपना कार्ड तो जमा करवा दिया, फिर जब उसका नंबर आया, तो वहां से चिल्लाया गया कि थॉमस अलवा एडीसन कौन है? तो वह खड़ा रहा। उन लोगों ने कहा कि कौन है यह एडीसन, बोलते क्यों नहीं? लाइन के आगे वही खड़ा था, शक तो यह हो कि यही आदमी होना चाहिए। और वह एडीसन इधर-उधर देखने लगा कि पता नहीं किसको बुलाते हैं। पीछे एक आदमी ने कहाः यह कैसा पागल आदमी है जो सामने खड़ा है, यही आदमी एडीसन है, मैं इसके पड़ोस में रहता हूं। एडीसन बोलाः ठीक याद दिलाया, बीस-पच्चीस साल से काम न पड़ने से नाम का कुछ ख्याल नहीं रहा।

यह होना चाहिए। सोते में अभी याद आ जाता है, जागने में भी भूल जाना चाहिए। बीस-पच्चीस साल से... मेरे मां-बाप को मरे हुए बहुत दिन हो गए, उसने कहा, तो मुझे कोई एडीसन कह कर बुलाता नहीं, मेरे पास विद्यार्थी होते हैं, वे मुझे एडीसन कहते नहीं। कोई मौका नहीं आया बीस-पच्चीस साल से, अपने अकेले कमरे में बैठा काम करता रहता हूं, इसलिए भूल गया। क्षमा करें। यह आदमी ठीक ही कहता होगा, क्योंकि कोई और जवाब भी नहीं देता, और मैं ही सामने हूं यह जरूर नाम मेरा ही होना चाहिए।

यह हमें पागल मालूम होगा। यह मुझे पागल नहीं मालूम होता। ऐसे आदमी में अहंकार मुश्किल है। ऐसे आदमी में दंभ का बोध मुश्किल है। नाम से, नाम के प्रति जाग जाना चाहिए--एक बात।

दूसरी बात यह स्मरण रखनी चाहिए कि जब हम अपने को "मैं" कहते हैं, हम अपने को एक इकाई, एक एनटायटी मान लेते हैं, हम एक टुकड़ा मान लेते हैं। इस जगत में कोई चीज टूटी हुई नहीं है। मैं एक फूल से आपको परिचय कराऊं, मैं एक फूल के पास ले जाऊं और आप कहें यह फूल बहुत सुंदर है, और आप उस फूल को प्रेम करने लगें, तो मैं आपसे कहूंगा, क्या सिर्फ फूल को ही प्रेम करिएगा, उस डाल को नहीं जो फूल के पीछे है। अगर आपका प्रेम सच्चा है, फूल आपको सुंदर मालूम हो रहा है, तो फूल में थोड़ा प्रवेश करिए, तो फूल कोई अकेला थोड़े ही है, फूल के भीतर घुसेंगे तो डाल मिलेगी, डाल न हो तो फूल नहीं हो सकता। और डाल के भीतर प्रविष्ट होंगे, तो वृक्ष मिलेगा। वृक्ष न हो, तो डाल नहीं हो सकती। और वृक्ष में भीतर प्रविष्ट होंगे, तो अदृश्य जड़ें मिलेंगी, जो दिखाई नहीं पड़तीं, वे न हों तो वृक्ष नहीं हो सकता। और अगर जड़ों में भी भीतर प्रविष्ट हो जाएं, तो भूमि मिलेगी, प्रकाश मिलेगा, सूर्य मिलेगा, आकाश मिलेगा, और तब पता चलेगा कि उस फूल के भीतर सूरज मौजूद है। और तब पता चलेगा कि उस फूल के भीतर सारी पृथ्वी मौजूद है। और तब पता चलेगा उस फूल के भीतर सारा ब्रह्मांड मौजूद है। उस फूल को जो इकाई समझता है, वह नासमझ है, और जो अपने को भी इकाई समझ लेता है, वह भी नासमझ है। यह सारा का सारा जगत एक छोटे से बिंदु पर भी पूरा का पूरा स्पंदित हो रहा है। एक छोटे से प्राण में भी यह सारा जगत स्पंदित हो रहा है। यह असंभव है कि मेरे इस छोटे से प्राण में इस पूरे जगत का हाथ न हो। "मैं" कहने का हक मुझे कहां रह जाता है? अगर कहीं कोई परमात्मा है तो उसे छोड़ कर मैं कहने का और कोई अधिकारी नहीं। और जो मैं कहता है वह सबसे बड़ा कुफ्र, सबसे बड़ा पाप करता है।

एक फकीर एक गांव से एक दफा गुजरा। उसका एक मित्र फकीर उस गांव में रहता था, उसने सोचा कि चलूं और उससे मिलता चलूं। लेकिन रात आधी हो गई थी, उसने सोचा, पता नहीं वह जागता हो या नहीं, फिर भी उसने चाहा कि देख लूं अगर कोई एकाध दीया उसके घर में जला होगा, तो द्वार खटखटा लूंगा, अन्यथा लौट आऊंगा। तो अपने रास्ते को छोड़ कर गांव के भीतर गया। आधी रात होती थी, उस फकीर के जिसके झोपड़े में वह गया, एक खिड़की पर रोशनी पड़ती थी अंदर से, उसने जाकर उसको खटखटाया, भीतर से पूछा गया, कौन है?

वे तो पुराने मित्र थे, उसने सोचा, पूरा क्या कहना, इतना ही कहने से पहचान लिया जाऊंगा, उसने कहा, मैं हूं। इतने ही कहने से पहचान लिया जाऊंगा, आवाज से ही पहचान लिया जाऊंगा। लेकिन इसके बाद भीतर से फिर कोई आवाज न आई। उसने द्वार दुबारा खटखटाया, लेकिन फिर कोई आवाज न आई, उसने फिर तीसरी बार खटखटाया और ऐसा लगने लगा जैसे वह घर में कोई है ही नहीं। वह बहुत हैरान हुआ। उसने जोर से दरवाजा पीटा और उसने कहा, यह क्या बात है, मेरे लिए दरवाजा क्यों नहीं खोलते? तो भीतर से कहा गया कि यह कौन पागल है जो अपने को मैं कहता है? सिवाय परमात्मा के और किसी को मैं कहने का कोई अधिकार नहीं है।

और यह सच है सिवाय परमात्मा के और किसी को कोई अधिकार नहीं है। और परमात्मा कैसे कहेगा? क्योंकि मैं तो कोई तभी कह सकता है जब "तू" भी मौजूद हो। इसलिए परमात्मा कह नहीं सकता मैं, क्योंकि उसके लिए कोई तू नहीं है। और हम जो मैं कहते हैं, हम अधिकारी नहीं हैं।

तो अपने भीतर इस बात को अनुभव करें कि सारा जगत, यह सारा ब्रह्मांड स्पंदित हो रहा है। यह श्वास मेरी आती है, न आए तो बात खत्म। यह सूरज रोशनी मुझमें ढालता है, न ढाले तो खत्म। वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार वर्ष बाद जमीन पर कोई नहीं रह सकेगा। क्योंकि सूरज ठंडा हो जाएगा। वह रोज अपनी गर्मी बांटता जा रहा है, चार हजार वर्ष में ठंडा हो जाएगा। फिर आप नहीं रह सकेंगे। मतलब सूरज आपके भीतर जिंदा है, सूरज नहीं है तो आप भी गए और डूब गए। यूं अपनी आंख खोल कर जो देखेगा वह पाएगा, मैं सारे ब्रह्मांड का स्पंदन हूं, मैं सारे ब्रह्मांड की अनच्युत धारा में एक अंग और हिस्सा हूं। एक अविभाज्य टुकड़ा हूं। इनडिविजुवल हूं, उससे अलग मेरी कोई सत्ता नहीं। और मैं मुझे अलग करता है। तो यह मैं झूठा है, जो अलग करता हो। इस जगत में कुछ भी अलग-अलग नहीं है, सब जुड़ा है और सब इकट्ठा है, यह सारा जगत एक टोटेलिटी है। एक समग्रता है, उस समग्रता को अनुभव करना, धर्म का अनुभव है और अपने को अलग अनुभव करना अधर्म का अनुभव है। सारा अधर्म इससे पैदा होता है कि मैं अलग हूं।

अगर ये दो बातें, अपने भीतर सारे ब्रह्मांड का स्पंदन और अपने नाम का झूठा होना, अगर आपकी स्मृति में बैठ जाएं तो अहंकार धीरे-धीरे, धीरे-धीरे विलीन हो जाता है। और तब जो चर्या पैदा होती है, तब जो आचरण होता है, वह अहंकार-शून्य हो जाता है।

तो एक तो सूत्र मैंने कहा, अहंकार-शून्य चर्या। दूसरा सूत्र हैः जीवन में अपरिग्रह का बोध। मैंने कहा कि जो जितनी शक्ति को इकट्ठा करता है वह उतना ही सत्य से दूर हो जाता है। शक्ति को इकट्ठा करना परिग्रह है और शक्ति को इकट्ठा न करने की जो बोध मनःस्थिति है वह अपरिग्रह है। मैं इकट्ठा न करूं, मैं जोड़ूं नहीं, मेरे पास इकट्ठा न हो, मैं क्रमशः उस तरफ चलूं जहां मैं अंत में बिल्कुल अकेला रह जाऊंगा, मेरे पास कुछ न रह जाए, बस मेरा होना ही रह जाए, ऐसा जो दृष्टिबोध है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रही जितना न्यूनतम संभव होगा, उतना अपने को फैलाएगा। परिग्रही जितनी अधिकतम संभव होगा, उतना अपने को फैलाएगा। और मजा यह है कि परिग्रही जितना फैलाता जाएगा उतना ही पाएगा उसका घेरा बहुत छोटा है और बड़ा होना चाहिए। और अपरिग्रही जितना घेरे को छोटा करता चला जाएगा, उतना ही पाएगा घेरा अभी बहुत बड़ा है, और थोड़ा छोटा कर लूं।

और बड़े मजे की बात है, परिग्रही को हमेशा घेरा छोटा दिखाई देगा, इसलिए वह दुखी होगा। और अपरिग्रही को हमेशा घेरा बड़ा दिखाई पड़ेगा, इसलिए वह हमेशा सुखी होगा। इतना बड़ा घेरा मेरे पास है।

गांधी जी जेल में बंद थे और सरदार पटेल भी उनके साथ बंद थे। गांधी जी उन दिनों दस छुआरे, रोज फुला कर सुबह नाश्ते में लेते थे। पटेल ने सोचा, दस छुआरों में ही कोई नाश्ता होता होगा, इतने से क्या होगा? पटेल को फुलाना पड़ता था। उन्होंने एक रात पंद्रह छुआरे फुला दिए, और उन्होंने सोचा, दस-पंद्रह में क्या फर्क पड़ता है, कौन गिनती करता है? और गांधीजी के इस हड्डी-हड्डी शरीर में थोड़ा ज्यादा भोजन पहुंचे तो अच्छा है। और फिर कौन हिसाब रखेगा? सुबह जब गांधी जी खाने लगे, उन्होंने कहा, छुआरे कुछ ज्यादा मालूम होते हैं। वैसे ही मैं बहुत ज्यादा लेता रहा हूं, ये इतने ज्यादा कैसे? पटेल ने कहा कि कुछ नहीं, कोई ज्यादा नहीं है, दस की जगह पंद्रह फुला दिए, दस और पंद्रह में कोई फर्क होता है? गांधी जी ने कहाः तूने अदभुत बात कही, अगर दस और पंद्रह में कोई फर्क नहीं होता तो पांच और दस में भी कोई फर्क नहीं होगा। आज से हम पांच ही ले लेंगे। यह अपरिग्रही की दृष्टि और बोध है। यूं अपरिग्रही अपनी सीमा को कम करता चला जाता है। और एक दिन उसकी सीमा विलीन हो जाती है। इतनी कम हो जाती है, जिस दिन सीमा विलीन हो जाती है, उसी दिन

वह असीम से जुड़ जाता है। अपरिग्रही सीमा को कम करते-करते एक दिन समाप्त कर देता है और असीम से जुड़ जाता है। और परिग्रही असीम सीमा को खींचने की कोशिश में बड़ी से बड़ी सीमा खींचता है और छोटा होता चला जाता है, क्योंकि हर सीमा उसे छोटी लगने लगती है।

यह बड़ी अदभुत बात है, जिसकी जितनी बड़ी सीमा होगी वह उतना ही छोटा आदमी होता है। और जिसकी कोई सीमा नहीं होती, उसकी विराटता का मुकाबला नहीं है। उससे बड़ा आदमी नहीं होता। तो दूसरी बात है, जिसे शांति को साधना हो उसे अपरिग्रह के बोध को रखना होगा, जीवन के प्रत्येक चरण में उठते-बैठते, सोते-जागते उसे देखना होगा कि हर सीमा छोटी होती चली जाए। और हर सीमा उसे बड़ी दिखाई पड़नी चाहिए, तब वह उसे छोटा करेगा। एक दिन जब कोई सीमा नहीं रह जाती और अपरिग्रह पूर्ण हो जाता है, तो शांति के बड़े गहरे आधार रख दिए जाते हैं। परिग्रह अशांति है, अपरिग्रह शांति हो जाता है। तो दूसरा सूत्र हैः जीवन में अपरिग्रह का बोध।

तीसरा सूत्र हैः अहिंसा की दृष्टि। वह व्यक्ति, जिसके पास अहिंसा की दृष्टि न हो, अपने हाथ से अशांति को रोज आमंत्रण देता है। वह व्यक्ति जिसके पास अहिंसा की दृष्टि हो, चौबीस घंटे शांति को आमंत्रण देता है। क्यों? हिंसा का अर्थ है, हम जगत के प्रति दुख भेज रहे हैं। और यह असंभव है कि जो व्यक्ति जगत के प्रति दुख भेज रहा हो, जगत उसे दुख न भेजे। यह कैसे संभव है कि मैं दुख बाटूं और फिर दुख मुझे उपलब्ध न हो? यह कैसे संभव है कि मैं दुख के बीज बोऊं और फिर दुख की फसल न काटूं? तो मैं तो एक-एक आदमी को थोड़ा-थोड़ा फुटकर दुख दूंगा, लेकिन वे सारे लोग मिल कर जब मुझे दुख देंगे तो मुझे तो बहुत भारी दुख को सहना पड़ेगा। तो एक व्यक्ति जितना दुख दे सकता है उससे अनंत गुना उसे वापस मिलता है। जिसे शांति को साधना है, उसे जानना होगा, वह इस जगत में किसी को दुख न दे। क्योंकि दुख दुख को बुला लाता है। और जो आनंद को वितरित करता है, वह आनंद को बुला लेता है।

हिंसा का अर्थ हैः दुख को बांटने की दृष्टि। हिंसा का अर्थ हैः दूसरे के दुख में सुख लेने का भाव। और हम सब ऐसे बने हैं। साधारणतः हमें यह दिखाई नहीं पड़ता। आप कहेंगे, कौन किसी के दुख में सुख लेता है? कोई आदमी मर जाता है तो हम दुखी होते हैं; किसी आदमी का मकान जल जाता है, तो हम दुखी होते हैं; किसी को चोट लग जाती है, तो हम दुखी होते हैं; कहां हम दूसरे के दुख में सुख मानते हैं? मैं आपसे कहूं, यह झूठ बात है, जब किसी का मकान जलता है तो आपको दुख हो नहीं सकता; इसलिए नहीं हो सकता है कि जब दूसरे का बहुत शानदार मकान बनता है तो आपको सुख होता है। अगर दूसरे के बनते शानदार मकान में आपको सुख होता हो तो उसके जलते मकान में दुख हो सकता है। लेकिन अगर दूसरे के बड़े शानदार मकान के बनने में दुख होता हो, तो आपका जो दुख मालूम होता है उसके जलते हुए मकान को देखते हुए, वह झूठा है। यह हो नहीं सकता। यह हो ही नहीं सकता। यह संभव ही नहीं है।

जो आदमी दूसरे के सुख में सुख को अनुभव कर सके, वही आदमी केवल दूसरे के दुख में दुख को अनुभव कर सकता है, दूसरा आदमी नहीं। तो बाकी जो हम दुख दिखलाते हैं, बिल्कुल झूठा है। किसी के मरने पर भी आपके भीतर कहीं रस अनुभव होता है। किसी के पैर टूट जाने पर रस अनुभव होता है। किसी के मकान के गिर जाने पर रस अनुभव होता है। रास्ते पर एक आदमी गिर पड़ता है, लोग खड़े होकर हंसने लगते हैं। जो लोग एक आदमी के गिरने पर, किसी का पैर फिसल गया और कोई गिर गया, जो लोग खड़े होकर हंस रहे हैं, ये वे लोग हैं जिन्हें कल मौका मिले तो किसी का पैर पकड़ कर गिरा कर हसेंगे। तो मुश्किल है कि न गिराएं। क्योंकि अगर किसी के गिरने में हंसी आ रही है, तो फिर गिराना दूसरा ही चरण है, कोई दिक्कत की बात नहीं है।

एक यात्री अरब से गुजरता था, एक नगर के चौरस्ते पर उसने एक अत्यंत गरीब लड़के को, एक अत्यंत दयनीय लड़के को, एक अत्यंत सूखी हड्डियों वाले लड़के को बड़ी भारी ठेलागाड़ी खींचते हुए देखा। उसे देख कर उसका दिल दुखी हो गया। वह गाड़ी उससे सम्हल भी नहीं रही थी, चौगड्डे पर काफी भीड़-भाड़ थी, ट्रैफिक था

और वह लड़का मुश्किल से खींच रहा था। सिपाही ने उसको जोर का एक चांटा मारा, वह लड़का गिर गया और उसकी गाड़ी भी उलट गई। और लोगों ने भी उसको लातें मारी, और उसे रास्ते के किनारे कर दिया कि बदतमीज बीच में सब गड़बड़ कर रहा है। उस यात्री ने अपनी डायरी में लिखा, वह मैं पढ़ता था, मुझे उसके वचन बड़े अदभुत लगे, उसने लिखाः उस दिन मैं पहचान गया कि यही लोग हैं जिन्होंने क्राइस्ट को सूली दी होगी। उसने कहा कि यही लोग हैं, मैं पहचान गया कि यही लोग हैं, जिन्होंने क्राइस्ट को सूली दी होगी। यही लोग हैं जिन्होंने सुकरात को जहर पिलाया होगा। यही लोग हैं जिनसे जमीन परेशान और दिक्कत में है। यह सारी जमीन उन लोगों से परेशान है जिनकी दृष्टि हिंसा की है। और यह अगर होता कि सारी दुनिया ही परेशान होती तो भी कोई हर्ज न था, मैं कहता, हिंसा करो, सारी दुनिया जब परेशान होती है, तो वह सारी परेशानी आप पर लौटने लगती है।

आपके हित में है अहिंसा, हिंसा आपके अहित में है। दूसरों के अहित में भर होती तो मैं आपसे न कहता कि फिकर मत करो, आपके ही अहित में है। हिंसा स्वयं का अहित है, हिंसा घूम कर अपने को दुख देना है। क्योंकि वह दुख लौट आता है। और अहिंसा हित है, अहिंसा अपने को आनंद देना है, क्योंकि जब हम दूसरे को आनंद बांटते हैं तो वह लौट आता है।

तो जो व्यक्ति शांति की तलाश में चला है, उसे स्मरण रखना होगा, उसकी चर्या से हिंसा क्षीण हो। उसके द्वारा किसी के मार्ग पर कांटे न डाले जाएं। और बन सके तो वह किसी के मार्ग पर दो फूल जरूर डाले। और फूल डालना बड़ा आसान है, कांटे डालना बड़ा कठिन है। और कांटे डालने में कोई भी आनंद नहीं है, और फूल डालने में बहुत आनंद है। एक दफा डालना सीखें, तो उस आनंद का पता पड़ना शुरू होता है।

तीसरा सूत्र मैं कहता हूंः अहिंसा-बोध। और चौथा सूत्र है शांति के साधक कोः अस्पर्श-भावना। उस सारे जगत के बीच रहते हुए निरंतर अनुभव करें कि मैं दूर और अलग हूं। कोई चीज मुझे स्पर्श नहीं करती है। जब कोई गाली दे, तो वह चुपचाप खड़े होकर देखे कि गाली आई, मेरे आर-पार निकल गई, मुझे उसने स्पर्श नहीं किया। जब कोई सुख आए तो वह अनुभव करे, सुख आया और निकल गया, उसने मुझे स्पर्श नहीं किया। वैसे ही जैसे मैं यहां बैठा हूं, और अभी इस कक्ष में प्रकाश है, और फिर प्रकाश को बुझा दिया जाए और उस कक्ष में अंधकार आ जाए, तो मैं क्या समझूंगा? मैं समझूंगा थोड़ी देर पहले मुझे प्रकाश घेरे हुए था, अब मुझे अंधकार घेरे हुए है, लेकिन मैं दोनों से ही कहां छू रहा हूं? मतलब दोनों में से कौन मेरे भीतर प्रविष्ट हो रहा है, न प्रकाश मेरे भीतर प्रविष्ट होता है, न अंधकार मेरे भीतर प्रविष्ट होता है। मैं तो अछूता खड़ा हुआ हूं। इस कमरे में प्रकाश आता और जाता है और मैं तो अछूता हूं। प्रकाश मुझे घेरता है, अंधकार मुझे घेरता है, लेकिन छूता कहां है? उसका स्पर्श मुझे कहां हो रहा है? वैसे ही सुख आए, दुख आए, सम्मान आए, अपमान आए, यह बोध होना जरूरी है, चीजें मुझ पर आती हैं और निकल जाती हैं, मैं तो अलग खड़ा रह जाता हूं। जो चीजें आती हैं और चली जाती हैं उनका मुझसे क्या नाता है? हम जैसे एक नदी के प्रवाह में खड़े हैं, पानी आ रहा है और बह रहा है और जा रहा है। और जैसे हम एक पहाड़ पर खड़े हैं और आंधियां आ रही हैं और जा रही हैं, मैं उनसे कहां स्पर्शित होता हूं?

अपने को इस भांति सजग करने की जरूरत है कि इस जगत में कुछ भी मुझे छूता नहीं। अगर इसका निरंतर बोध और अभ्यास चले कि जगत में मुझे कुछ भी छूता नहीं है, जगत में मुझे कुछ भी स्पर्श नहीं करता है, तो क्रमशः जगत और आपके बीच एक नये संबंध का जन्म हो जाएगा, अस्पर्श के संबंध का। अभी हमें हर चीज छू लेती है, और हमारा संबंध स्पर्श का है, और तब हमें कोई भी चीज छू नहीं सकेगी, और हमारा संबंध अस्पर्श का होगा। जिस व्यक्ति को जितनी ज्यादा चीजें छूती हैं, वह उतना अशांत होता है। और जिसे जितनी कम चीजें छूती हैं, वह उतना शांत हो जाता है।

शांति के ये चार चरण हैंः अहंकार-शून्य चर्या, अपरिग्रह बोध, अहिंसा दृष्टि, अस्पर्श भावना। जो इन चार पायों को सम्हाल लेता है, उसकी शांति की बुनियाद रख दी जाती है। और जो शांत हो जाता है, सत्य उससे दूर नहीं है। शांति का चक्षु सत्य को अत्यंत निकट, अत्यंत निकट अपने ही भीतर पा लेता है।

जिन्हें सत्य की प्यास है, उन्हें शांति को साधना आवश्यक है। और जैसे कोई किसान बीज बोने के पहले भूमि को तैयार करता है, वैसे ही जो सत्य के बीज बोना चाहते हैं, उन्हें शांति की भूमि को तैयार कर लेना पड़ता है।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम से और शांति से सुना है, उससे बहुत अनुगृहीत हुआ, उससे आनंदित हुआ, प्रभु आपको उस दिशा में ले जाए जहां प्रकाश है, यही मेरी कामना है।

चौथा प्रवचन

जागरण का आनंद

मेरे प्रिय आत्मन्!

कल दोपहर को कुछ मित्रों से मैं बात करता था और उनको मैंने एक कहानी कही, और फिर मुझे ख्याल आया कि वह कहानी मैं आपको भी कहूं और उससे अपनी चर्चा को आज प्रारंभ करूं।

एक छोटे से गांव में, रमजान के दिन थे, मुसलमानों की प्रार्थना के दिन थे, आधी रात को एक ढोल पीटने वाले ने एक घर के सामने जाकर ढोल पीटा। वह एक फकीर था। और लोग प्रार्थना के लिए उठ जाएं सुबह-सुबह, इसलिए गांव में जाकर ढोल पीट रहा था। लेकिन ढोल तो सुबह पीटा जाता है। अभी आधी रात थी और उसने एक मकान के सामने जाकर आवाज दी और ढोल पीटा। और मकान में पूरा अंधकार था, उसमें कोई दीया न जलता था, और बाहर कोई रोशनी नहीं आती थी। एक राहगीर ने उससे पूछा कि आधी रात को, अभी तो सुबह नहीं हुई, लोगों को उठाने से क्या प्रयोजन है? और एक ऐसे मकान के सामने जिससे कोई प्रकाश न निकलता हो, जिसमें कोई दीया न जलता हो, जिसमें कोई है भी यह भी पता नहीं, उसके सामने आवाज करने का क्या अर्थ है? क्या तुम्हारा मस्तिष्क ठीक नहीं कि आधी रात को लोगों को जगाए दे रहे हो?

उस फकीर ने कहा कि अगर आपकी बात पूरी हो गई हो तो मैं आपसे दो शब्द कहूं? एक तो मैं आपको यह कहूं, जिन्हें सुबह उठना है उन्हें आधी रात में जाग जाना चाहिए। और सुबह ही हो जाएगी तो फिर मैं जगाऊंगा, जागने में बहुत समय लग जाता है, सुबह बीत जाएगी, इसलिए आधी रात को उठाने आ गया हूं। और जिस घर के भीतर एक भी दीया नहीं जल रहा है उस घर के लोग बहुत गहरे सोए होंगे, बहुत देर उनको उठने में लगेगी, इसलिए आधी रात को उस द्वार पर ढोल पीटता हूं। और जो कान न सुन सकते हों, और जो आंखें न देख सकती हों, और जो लोग सोए हों, अगर हम उन्हें जगाना छोड़ दें और उनके कानों तक आवाजों को पहुंचाना छोड़ दें, तो दुनिया का क्या होगा?

उसने अदभुत बात कही, उसने बड़े अर्थ की बात कही। उसने कहा कि आधी रात को जगाने आ गया हूं ताकि वे प्रभात के पहले जग जाएं। और जिस घर में बिल्कुल अंधकार है उस घर पर ज्यादा मेहनत करूंगा। क्योंकि अंधकार का अर्थ है कि लोग बहुत गहरे सोए होंगे, और उनकी नींद टूट जानी जरूरी है।

मुझे भी अनेक बार लगता है कि मैं कहीं आपको आधी रात में जगाने तो नहीं आ गया हूं। और मुझे भी कई बार लगता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप बहुत गहरे सोए हों और मैं आपको जगाऊं और आपको तकलीफ और पीड़ा हो। और ऐसा हमेशा हुआ है। जब भी कोई किसी को नींद से जगाता है, तो धन्यवाद देने की बजाय वह गुस्सा और क्रोध से भर जाता है।

हमने क्राइस्ट को सूली दी कि कुछ लोगों को उन्होंने बेवक्त जगा दिया और सुकरात को जहर दे दिया, क्योंकि सोने वाले पसंद नहीं करते कि उनकी नींद टूट जाए। लेकिन जिन्हें जागरण का थोड़ा भी अनुभव होता है, जिन्हें जागरण के आनंद की थोड़ी सी भी ध्वनि मिलती है, उनकी भी एक मजबूरी है, उनकी भी एक विवशता है, वे बिना जगाए नहीं रह सकते।

इसलिए अगर आपकी नींद में मेरी बातों से थोड़ी चोट पहुंचे, और आपको थोड़ा करवट बदलनी पड़े, या आपके भीतर कोई जागरण अनुभव हो, आपके सपने टूट जाएं, तो मुझे क्षमा करना। यह मेरी मजबूरी है कि मैं कुछ आपकी नींद को तोड़ूं। यह जानते हुए कि नींद टूटना, नींद को तोड़ना दुखद है। लेकिन यह भी जानते हुए

कि जिसकी नींद टूट जाती है, वह जब जाग कर देखता है तो उसे पता चलता है कि नींद से बड़ा और कोई दुख न था, नींद से बड़ी और कोई पीड़ा न थी। यह इस कहानी से मैं आज की बात शुरू करना चाहता हूं।

इसलिए यह कहानी मैंने चुनी है--आज करीब-करीब सारी मनुष्यता सोई हुई है। आज करीब-करीब सारी मनुष्यता के भवन में कोई प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। सारे दीये बुझे हुए मालूम पड़ते हैं। और जहां तक मनुष्यता का संबंध है, प्रभात तो आना बहुत दिनों से बंद हो गया, हम आधी रात में बहुत सैकड़ों वर्षों से जी रहे हैं। आधी रात आधी रात ही बनी हुई है, सुबह नहीं आती। और अब तो इतनी घबड़ाहट हो गई है, इतनी पीड़ा हो गई है, और सुबह की आशा भी खोने लगी है और ऐसा लगता है कि कहीं हमें रात में ही समाप्त न हो जाना पड़े। इसलिए इस कहानी को चुना।

मनुष्यता सोई हुई हो, आधी रात हो, और हमारे सब दीये बुझे हों, तो क्या करना होगा? और इसके दुष्परिणाम चारों तरफ दिखाई पड़ने शुरू हुए हैं। इसके सबसे बड़े दुष्परिणाम ये हुए हैं कि हर आदमी इतनी पीड़ा और दुख और संताप से भर गया है कि जीना दूभर मालूम होता है, जीना बहुत कष्टप्रद मालूम होता है, जीना एक बोझ और भार मालूम होता है।

बुद्ध और महावीर ने तो जीवन को आनंद कहा है। उपनिषद के ऋषियों ने चिल्ला कर कहा है कि अमृत और आनंद है यह जीवन। जिन्होंने उस जीवन को जाना है वे तो नाचने लगे हैं, लेकिन हम, हम भी उसी जीवन में खड़े हैं और हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हम उन अंधों की भांति हैं जो प्रकाश में खड़े हों और जिनकी आंखें बंद हैं और जिन्हें प्रकाश का कोई अनुभव नहीं मालूम होता। और हम उन लोगों की भांति हैं जिनके चारों तरफ आनंद बरस रहा हो लेकिन जिनके भीतर कोई रिसेप्टिविटी, कोई ग्राहकता नहीं है। और इसलिए वे आनंद से वंचित रह जाते हैं।

यह जो सारी दुनिया में घटित हुआ है, अगर यह, यह स्थिति नहीं तोड़ी जा सकी, अगर यह दुर्भाग्य नहीं पोंछा जा सका, अगर यह दुर्घटना नहीं मिटाई जा सकी, तो बहुत असंभव नहीं है कि मनुष्य थोड़े दिनों में एक सामूहिक आत्मघात कर ले। एक युनिवर्सल सुसाइड से हम गुजरने के करीब हैं। यह हो सकता है कि बहुत जल्द हम देखें कि हम सारे लोगों ने इकट्ठा अपने को समाप्त कर लिया है। अगर युद्ध हुआ आने वाला तो हम सब अपने को समाप्त कर लेंगे। चारों तरफ दुनिया में कोशिश है कि युद्ध न हो, लेकिन मैं आपसे कहूं, अगर मनुष्य का संबंध आनंद से नहीं होता, तो युद्ध होगा और सारे लोगों को अपने को समाप्त कर लेने की तैयारी करनी होगी। जो सदी इतनी पीड़ित हो, उसका परिणाम सिवाय विनाश के और कुछ भी नहीं हो सकता। जो लोग इतने दुखी हों, उनकी आकांक्षा आतंरिक आकांक्षा मृत्यु के लिए हो जाती है जीवन के लिए नहीं।

दुखी आदमी मरना चाहता है, दुखी सदी भी मरना चाहती है, और वह मरने के उपाय खोजती है अनेक बहानों से। पिछले पचास वर्षों से हम मरने के बहाने खोज रहे हैं। दो महायुद्ध हमने किए इस आशा में कि हम मर जाएंगे। दस करोड़ लोग मरे, लेकिन हम फिर भी बाकी रह गए, मनुष्यता बहुत बड़ी है। अब हम एक तैयारी कर रहे हैं कि एक मनुष्य न बच सके, एक मनुष्य क्या एक जीवन का कोई भी स्पंदन शेष न रह सके। लोग सोचते होंगे युद्धों का कारण आर्थिक है, लोग सोचते होंगे युद्धों का कारण राजनैतिक है; युद्धों का कारण न आर्थिक है, न राजनैतिक है, युद्धों का कारण आध्यात्मिक है।

दुखी जन युद्ध में अपनी राहत खोजते हैं, दुखी जन मरने में अपनी राहत खोजते हैं, दुखी जन किसी भांति मृत्यु की पूजा करने लगते हैं, वे मरने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। केवल आनंदित लोग ही युद्ध के विपरीत और शांति के पक्ष में हो सकते हैं। केवल आनंदित लोग ही अंधकार के विपरीत आलोक के पक्ष में हो सकते हैं। अगर दुनिया को और मनुष्य को विनाश से बचाना हो तो एक-एक मनुष्य के हृदय में आनंद के संगीत की प्रतिध्वनि पहुंचानी होगी। और मेरे देखने में धर्म मनुष्य के भीतर वैसे अंतर्नाद को, वैसी प्रतिध्वनियों को, वैसे प्रेम को, वैसे संगीत को पैदा करने का उपाय और मार्ग है। धर्म को कोई मैं पूजा नहीं मानता हूं, धर्म को कोई अर्चना नहीं मानता हूं, धर्म का कोई संबंध मंदिरों और मस्जिदों से नहीं है, धर्म का संबंध तो मनुष्य के अंतर-हृदय को संगीत

में परिणित करने के विज्ञान से है। धर्म का मूल संबंध मनुष्य के हृदय को आनंद के स्पंदनों में उत्तेजित करने से, आरोहण करने से है।

मनुष्य के भीतर बड़ी प्रसुप्त संभावनाएं हैं, बड़े बीज हैं, जो विकसित हो जाएं तो आनंद में फलित हो जाते हैं। मनुष्य के भीतर बड़ी-बड़ी संभावनाएं हैं, जो अगर पूर्ण हो जाएं तो परमात्मा कहीं खोजना नहीं होता वह मनुष्य के भीतर, मनुष्य की कली से ही फूल की तरह प्रकट हो जाता है।

हर मनुष्य के भीतर परमात्मा है। और जो भीतर न हो उसे कभी पाया नहीं जा सकता, जो भीतर छिपा न हो उसे कभी उपलब्ध नहीं किया जा सकता, जिसे हम उपलब्ध करते हैं वह एक अर्थों में हमें पहले से ही उपलब्ध हुआ होता है। जिसे बीज बाद में वृक्ष के रूप में पाता है वह बीज उसे पहले से छिपाए रखता है। बड़े सूक्ष्म, बड़ी सूक्ष्म सत्ता में वह जो वृक्ष है वह बीज में छिपा होता है।

बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट अगर वृक्ष हैं, तो यह सारी मनुष्यता छोटे-छोटे बीज हैं। और इन बीजों में वे पूरी संभावनाएं हैं जो उनमें प्रकट हुई हैं। वह आनंद, वह नृत्य, वह संगीत जो उनमें फलित हुआ, वह आलोक और वह जीवन की कृतार्थता और धन्यता जो उनसे प्रकट हुई, हर आदमी की संभावना और हर आदमी का अधिकार है। और वह मनुष्य जो अपनी ही संभावना की दिशा में प्रयास नहीं कर रहा है वह अपनी मनुष्यता का अपमान कर रहा है। और वह उस, उस वसीयत को, उस अधिकार को जो प्रत्येक को प्रकृति और परमात्मा देता है उसे खो रहा है।

एक ही पाप है, कोई दूसरा पाप नहीं है, एक ही पाप है कि कोई मनुष्य अपने भीतर जो दिव्यता तक उठने की संभावना थी उसके विपरीत चला जाए। एक ही पाप है कि मनुष्य के भीतर जो बीज वृक्ष हो सकता था वह वृक्ष न हो पाए। एक ही पाप है कि मनुष्य जो अपनी आत्यंतिक ऊंचाई को छू सकता था वह उसे बिना छूए रह जाए। और यह पाप किसी और के प्रति नहीं है, यह पाप प्रत्येक मनुष्य अपने ही प्रति करता है। इस जगत में न पाप कोई दूसरे के प्रति है, न पुण्य किसी दूसरे के प्रति है, इस जगत में जो भी मनुष्य करता है वह सब अपने साथ करता है। उसका सारा किया हुआ स्वयं के साथ है और स्वयं के भीतर ही परिवर्तन, स्वयं के भीतर ही विकास या स्वयं के भीतर ही पतन का मार्ग खोल देता है।

सारे स्वर्ग और नरक, सारे पाप और पुण्य, सारी संभावनाएं और सारी वास्तविकताएं मनुष्य के छोटे से अणु में समाविष्ट हैं। उनको कैसे खोला जा सके, उन्हें कैसे विकसित किया जा सके, उन्हें कैसे परिपूर्णता तक ले जाया जा सके--धर्म उसका विज्ञान है। तो जब मैं धर्म की बात करता हूं, तो वे मंदिर आपकी आंखों में न आ जाएं जो चारों तरफ खड़े हैं, वे मस्जिदें आपको न दिखाई पड़ने लगें जो चारों तरफ बनी हुई हैं, और वे घंटियां आपको सुनाई न पड़ें जो पत्थरों की मूर्तियों के सामने बजाई जाती हैं, वे सारी बातों से मेरा धर्म का संबंध नहीं है। उस तरह के तथाकथित झूठे नामों ने, उस तरह की दीवालों और उस तरह के मकानों ने, उस तरह की मूर्तियां और उस तरह के शास्त्रों ने मनुष्य को खंडित किया है, संगीत से नहीं भरा। और उस तरह के धर्म के नाम पर बहुत पाप हैं, उस तरह के धर्म के नाम पर बहुत खून हैं, उस तरह के धर्म के नाम पर मनुष्य के इतिहास में जितनी बुराई हुई है और किसी चीज से नहीं हुई। उस धर्म की मैं बात नहीं कर रहा हूं, मैं तो उस सनातन, उस शाश्वत धर्म की बात कर रहा हूं जिसका बाहर के जगत से कोई संबंध नहीं होता। जिसका संबंध तो भीतर के जगत से है और जिसका संबंध तो भीतर मनुष्य के मन को मंदिर में परिणित करने से है और जिसका संबंध तो मनुष्य के हृदय को ऐसी ग्राहकता, ऐसी सेंसिटिविटी, ऐसी रिसेप्टिविटी, ऐसी ग्रहणशीलता देने से है कि हृदय उन्मुक्त हो जाए और खुल जाए। और जगत में चारों तरफ जो सौंदर्य है, जो सत्य है, वह उसमें प्रतिबिंबित और प्रतिफलित होने लगे। यह कैसे हो सकता है? यह कैसे संभव हो सकता है कि एक मनुष्य दर्पण बन जाए? यह कैसे हो सकता है कि एक मनुष्य इतना ग्राहक बन जाए कि सारे जगत का प्रेम और आनंद उसे अनुभव होने लगे?

हम उसी अनुभूति में, उसी अनुपात में अनुभूति करते हैं जिस अनुपात में हमारी ग्राहकता हो जाती है। जिस आदमी के पास आंख नहीं है उसे प्रकाश का अनुभव नहीं होगा। प्रकाश हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। प्रकाश का होना काफी नहीं है, आंख भी चाहिए। आंख का क्या अर्थ है? आंख का अर्थ हैः हमारे पास ऐसा अंग चाहिए जो प्रकाश की संवेदना को पकड़ सके। सारे जगत में संगीत गूंजता हो, लेकिन किसी के पास कान न हों, तो क्या होगा? संगीत काफी नहीं है, कान चाहिए जो उस संगीत को पकड़ सकें। सारा जगत परमात्मा से भरा है; लेकिन हमारे पास वह आंख चाहिए जो उसे पकड़ सके, वे कान चाहिए जो उसे सुन सकें, वह हृदय चाहिए जो उससे आंदोलित हो सके।

और मनुष्य के भीतर वैसे अंतःकरण का विकास हो सकता है। इसलिए यह न पूछें कि ईश्वर है या नहीं, यह पूछें कि क्या ऐसा अंतःकरण हो सकता है भीतर जो संसार के भीतर कुछ और भी देखने लगे, जो दृश्य के भीतर कुछ और भी अनुभव करने लगे, जो पदार्थ के भीतर और भी सूक्ष्म स्पंदनों को जानने लगे जो कि पदार्थ के नहीं हैं? तो जब मुझसे कोई पूछता हैः ईश्वर है या नहीं? तो मैं उससे पूछता हूं, यह वैसी बात ही है जैसे अंधा पूछे प्रकाश है या नहीं? अंधे को पूछना चाहिए, क्या आंख होती है या नहीं? वे लोग जो पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं, गलत बात पूछते हैं। और फिर उस गलत बात को पूछ कर दो तरह के वर्ग दुनिया में विभाजित हो गए हैं। एक कहता है, ईश्वर है; एक कहता है, ईश्वर नहीं है। ये दोनों नासमझों के वर्ग हैं। क्योंकि ईश्वर... कोई झगड़ा नहीं हो सकता, सवाल तो आंख का है। पूछना चाहिए, आंख है या आंख नहीं है?

आंख नहीं है, तो परमात्मा नहीं होगा। और आंख है, तो परमात्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं रह जाता है। इसलिए विवाद वहां नहीं है, और जो शास्त्र उस पर विवाद करते हैं वे नासमझों ने लिखे होंगे। और जो लोग इस संबंध में विभाजन करते हैं कि हम आस्तिक हैं और नास्तिक हैं, वे अज्ञानियों के वर्ग होंगे। उन्हें कुछ ज्ञान, उन्हें कुछ बोध नहीं है। जिसे बोध है वह यह पूछता नहीं। यह सवाल नहीं है, जिसे बोध है उसे दिखाई पड़ता है। जिसे दिखाई पड़ता है उसमें श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसमें ज्ञान उत्पन्न होता है। उसे दिखाई पड़ना शुरू होता है, उसका सारा जीवन परिवर्तित हो जाता है।

कैसे वह अंतःकरण, कैसे वह आंख पैदा हो सके, उस संबंध में मैं थोड़ी सी बातें मैं आपसे आज कहना चाहूंगा।

अगर मनुष्य को अपने को बदलना है, तो कुछ करना होगा। इस जगत में जितने उतार हैं उन उतारों के लिए कुछ भी नहीं करना होता है, उन पर तो कोई लुढ़कता चला जाए तो भी नीचे पहुंच जाएगा। लेकिन जितने चढ़ाव हैं उनके लिए कुछ करना होता है। और बहुत कुछ करना होता है। और सबसे बड़ी बात तो यह करनी होती है कि जितनी ऊंचाइयां छूनी हों, जितनी ऊंचाइयों पर पहुंचना हो, जितने उत्तुंग शिखर पर आरोहण करना हो, उतना ही मनुष्य को अपने भीतर उस ऊंचाई की योग्यता, उस ऊंचाई की पात्रता, उस ऊंचाई पर जीने की क्षमता पैदा करनी होती है, अन्यथा ऊंचाई मृत्यु बन जाएगी।

जो लोग नीचाइयों में जीने के आदी हैं, वे लोग ऊंचाइयों पर अगर ले जाए जाएं, और उनके भीतर पात्रता और क्षमता पैदा न हुई हो, तो ऊंचाइयां उनके लिए मृत्यु हो जाएंगी। जो लोग घने अंधकार में रहने के आदी हों, और जिनकी आंखों ने प्रकाश को कभी न छुआ हो, अगर वे अचानक प्रकाश में ले जाए जाएं, तो उनकी आंखें अंधी हो जाएंगी। जिन लोगों ने कभी कोई ध्वनि न सुनी हो, जिनके कान कभी सक्रिय न हुए हों, अचानक अगर उन्हें संगीत के जगत में ले जाया जाए, वे पागल हो जाएंगे।

ऊंचाइयां छूने के लिए पात्रता और क्षमता विकसित करनी होती है, ऊंचाइयां छूने के लिए नीचाइयों में ही रहते हुए ऊंचाइयों की योग्यता, उन पर जीने की संभावना और क्षमता अर्जित करनी होती है और जिस मात्रा में क्षमता अर्जित होती जाती है उसी मात्रा में व्यक्ति ऊपर चढ़ता चला जाता है।

यह स्मरण रखें, परमात्मा का, या सत्य का, या प्रकाश का मार्ग, आप जितने पात्र होते चले जाते हैं उतनी ही सीढ़ियां अपने आप पार हो जाती हैं, सीढ़ियां पार नहीं करनी होतीं। जिस मात्रा में ऊंचाइयों में रहने में आप समर्थ हो जाते हैं, प्रकृति के नियम उन ऊंचाइयों पर आपको पहुंचा देते हैं। जिस ऊंचाई पर आप रहने में समर्थ हो जाते हैं, प्रकृति के नियम उस ऊंचाई पर आपको पहुंचा देते हैं। अगर पत्थर का बर्फ जमा हो, अगर पानी का बर्फ जमा हो, अगर बर्फ की शिलाएं जमी हों, तो बर्फ बहता नहीं, बर्फ ठोस है। लेकिन अगर सूरज का उत्ताप पड़े और बर्फ पिघल कर पानी हो जाए अगर, तो बर्फ तो नहीं बहता था, लेकिन पानी बहने लगता है। जैसे ही, जैसे ही उत्ताप बर्फ को पानी बना देता है, एक नये नियम की शुरुआत हो जाती है। पानी में बहने की क्षमता आ जाती है। और अगर सूरज का उत्ताप पानी को भाप बना दे; तो पानी तो ऊपर नहीं उठता था, लेकिन भाप ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। जैसे ही पानी भाप बनता है, भाप ऊपर उठने लगती है। उसकी गति ऊपर की तरफ शुरू हो जाती है। जिस बात की पात्रता पैदा हो जाए उसी जगत में संचरण शुरू हो जाता है, उसी जगत में प्रवेश शुरू हो जाता है।

धर्म की साधना पात्रता की साधना है। ऊंचाइयों पर अपने को ले जाने योग्य पात्रता पैदा करते ही वे ऊंचाइयां तत्क्षण उपलब्ध हो जाती हैं। उन ऊंचाइयों को पाने के लिए कुछ और नहीं करना होता। जो जितना पात्र है उतना उसे उपलब्ध हो जाता है, यह शाश्वत नियम है। और जो जितना पात्र है उसे मांगना नहीं पड़ता, उतनी पूर्ति उसकी भर दी जाती है।

कैसे हमारे भीतर यह पात्रता उत्पन्न हो सके, उसके कुछ सूत्र आपको मैं समझाना चाहूंगा। पांच सूत्रों की आज मैं बात करना चाहता हूं। पहला सूत्र हैः जो पात्रता उपलब्ध करना चाहता है, उसे श्रमनिष्ठा, उसे आत्मश्रद्धा उत्पन्न करनी होगी। श्रमनिष्ठा और आत्मश्रद्धा का अर्थ मैं आपको समझा दूं। कुछ लोग हैं इस जमीन पर जो सोचते हैं कि परमात्मा किसी के प्रसाद से मिल जाएगा; कुछ लोग हैं जो सोचते हैं परमात्मा किसी के आशीर्वाद से मिल जाएगा, कुछ लोग हैं जो सोचते हैं परमात्मा कोई हमें दे देगा। ऐसे लोग गलत सोचते हैं। ऐसे लोगों के सोचने का पूरा दृष्टिकोण भ्रांत है। ऐसे लोग अपने तमस को, अपने आलस्य को इस सारी बातों में छिपाते हैं। मुझे, मेरे पास, सैकड़ों लोगों से मुझे मिलना होता है, जो यह कहते हैं, हम क्या करें, जो कुछ करेगा परमात्मा कर देगा। जो कहते हैं, हम क्या करें, किसी साधु की, किसी गुरु की कृपा से सब कुछ हो जाएगा। जो कहते हैं, कोई किसी के चरणों में हम समर्पित हो जाएंगे, वह सब कर देगा।

ऐसा संभव नहीं है। जिसको सत्य के जगत में आरोहण करना हो वह मुफ्त में सत्य को नहीं पा सकता। पात्रताएं मुफ्त में नहीं मिलती हैं। क्योंकि पात्रताएं तो आंतरिक परिवर्तन हैं। पात्रताएं कोई वस्तुएं नहीं हैं कि कोई दे दे, क्षमताएं कोई वस्तुएं नहीं हैं कि कोई आपको दान कर दे। क्षमताएं कोई ऐसी चीजें नहीं हैं कि कहीं से आप चुरा लाएं। सत्य की न चोरी होती है, और न सत्य भिक्षा में मिलता है, और न सत्य बाजार में खरीदा जा सकता है, उसके लिए तो स्वयं का, स्वयं का प्रयास, स्वयं का श्रम, और स्वयं पर श्रद्धा रखनी होगी। और बड़ी मजे की बात है, जो लोग स्वयं पर श्रद्धा नहीं कर सकते हैं वे लोग दूसरों पर श्रद्धा करना शुरू कर देते हैं। जो आदमी दूसरों पर श्रद्धा करता है वह किसी न किसी रूप में स्वयं के प्रति अश्रद्धालु है।

तो मैं कहता हूंः किसी पर श्रद्धा मत करना, एक ही श्रद्धा काफी है कि वह स्वयं पर हो। यह आस्था और यह निष्ठा कि मेरे भीतर भी मनुष्यता है, मेरे भीतर भी मनुष्यता का ही स्पंदन है, मेरे हृदय में भी वही धड़कनें हैं जो बुद्ध के, महावीर के, कृष्ण या क्राइस्ट के हृदय में थीं। मेरे प्राणों में भी, मेरे शरीर में भी, मेरे चित्त और मन में भी वे ही स्पंदन, वही सूर्य, वही प्रकाश, वही पृथ्वी मुझे बनाती है जिसने उन्हें बनाया था। वही खून मेरी रगों में बहता है जो उनकी में बहता था। वही आत्मा बीज-रूप में मेरे भीतर है जो उनके भीतर थी। जो उनको संभव हुआ वह मेरे भीतर भी संभव हो सकता है।

बुद्ध के पिछले जन्म की एक कथा है। बुद्ध के पिछले जन्म की एक कथा है--जब वे बुद्ध नहीं हुए थे। उस समय दीपंकर नाम का एक बहुत प्रबुद्ध पुरुष था, बहुत अलौकिक दिव्य ज्योति को उपलब्ध पुरुष था। बुद्ध अपने उस पिछले जन्म में उस दीपंकर बुद्ध के दर्शन करने गए। उस दीपंकर नाम के, उस अलौकिक दिव्य पुरुष के दर्शन को गए। बुद्ध ने जाकर प्रणाम किया दीपंकर को, उनके चरण छूए; दीपंकर ने भी उलटे उनको प्रणाम किया और उनके चरण छूए। वे घबड़ा गए और उन्होंने कहा यह क्या करते हैं आप? मेरा चरण छूना, मेरा प्रणाम करना तो ठीक था, लेकिन आप जैसा भागवत चैतन्य को उपलब्ध व्यक्ति मेरे चरण छूए? यह कैसी मुश्किल कर दी आपने? यह कितना मुझे दिक्कत में डाल दिया? दीपंकर ने कहाः तुम वही देख रहे हो जो तुम हो, मैं वह भी देखता हूं जो तुम हो सकोगे, जो तुम हो सकते हो। मेरे प्रणाम उसके लिए हैं जो कल हो जाएगा। और हर आदमी इस अर्थ में प्रणाम योग्य हो गया। क्योंकि हर आदमी के भीतर वह देखा जा सकता है जो वह हो सकता है। अपने भीतर उस संभावना को स्मरण करने से आत्म-श्रद्धा उत्पन्न होती है। अपने भीतर उस आत्यंतिक ऊंचाई के विचार करने से स्वयं पर विश्वास उत्पन्न होता है। और जिस मनुष्य में दूसरों पर आस्था करने की प्रवृत्ति पैदा कर दी जाए, जिस मनुष्य में दूसरों के चरणों में गिरने की प्रवृत्ति पैदा कर दी जाए, जिस मनुष्य को यह विश्वास दिलाया जाए कि दूसरे तुम्हारे लिए कुछ कर सकेंगे, वह मनुष्य आत्महीन हो जाता है, वह मनुष्य क्रमशः नीचे गिरता जाता है।

मैं किसी के प्रति समर्पण को नहीं कहता हूं। आत्म-समर्पण पर्याप्त है। स्वयं की शरण पकड़ लेना पर्याप्त है। किसी और के चरण पकड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। और जब भी कोई मनुष्य किसी दूसरे के चरण पकड़ता है तभी वह अपना अपमान कर रहा है, और अपने भीतर बैठे परमात्मा का भी। इसलिए कोई किसी के चरण न पकड़े; स्वयं की शरण पर्याप्त है, आत्म-शरण हो जाना पर्याप्त है। इसे मैं आत्म-निष्ठा और आत्म-श्रद्धा कहता हूं। और जिसे आत्म-निष्ठा और आत्म-श्रद्धा उत्पन्न होगी, वही व्यक्ति श्रम में संलग्न होगा, अन्यथा भीख मांगने की आदत हो जाएगी।

श्रम में कौन संलग्न होगा? और सत्य श्रम से ही मिलेगा। इस जगत में क्षुद्रतम चीजें भी बिना श्रम के उपलब्ध नहीं होती हैं। और क्षुद्रतम चीजों के लिए भी मूल्य चुकाना होता है। सत्य के लिए क्या मूल्य चुकाना होगा? सत्य के लिए सिवाय जीवन के मूल्य के और कोई मार्ग नहीं है। और सब चीजें छोटी पड़ जाती हैं। और कोई चीज सत्य का मूल्य नहीं हो सकती।

श्रम और आत्यंतिक श्रम; और उस सीमा तक मूल्य चुकाने का साहस कि अगर मुझे जीवन भी खोना पड़े तो मैं खो दूंगा।

सुकरात जब मरने लगा और जब उसे जहर दिया जाने को था, तो उसके मित्रों ने कहा कि तुम यह कह दो कि तुम जो कहते थे वह सत्य नहीं है, तो तुम्हारा जीवन बच जाए। सुकरात ने कहाः सत्य को खोकर जीवन बचाना बड़ी चीज खोकर छोटी चीज बचाना हो जाएगा। सुकरात ने कहाः सत्य को खोकर जीवन बचाना बड़ी चीज खोकर छोटी चीज बचाना हो जाएगा। और यह जीवन तो आज नहीं कल छिनने वाला है। जो छिनने वाला है उसे बचा कर उसे खो देना जो कभी नहीं छिनेगा, नासमझी हो जाएगी। तो सुकरात ने कहाः मेरे मित्रो, अगर तुम मुझे प्रेम करते हो, तो मुझे सत्य को बचाने दो और जीवन को जाने दो।

जिसे थोड़ी अंतर्दृष्टि है उसे जानना चाहिए कि जीवन से भी मूल्यवान कुछ और भी है। जिनके लिए जीवन ही अंतिम मूल्य है, वे लोग संसारिक हैं। और जिनकी दृष्टि में जीवन से भी मूल्यवान कुछ है, वे लोग धार्मिक हैं। जिनके लिए जीवन सब कुछ है, वे लोग संसारिक हैं और जिनके लिए जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान कुछ है, वे लोग धार्मिक हैं। ऐसे लोग धार्मिक हैं जिनके पास एक ऐसा बिंदु भी है जिसके लिए वे जीवन को भी खो सकते हैं।

पांच सूफी फकीर हुए, उन पांचों सूफी फकीरों को फांसी दी जाती थी। वे पांचों लाइन से बिठाए गए थे और जल्लाद एक-एक को काट देगा। और लाखों लोग उन्हें देखने इकट्ठे हुए थे। नूरी नाम का फकीर था, वह

आगे बैठा था। जल्लाद ने अपनी तलवार उठाई और उसने कहा कि फकीर नूरी उठो और खड़े हो जाओ। वह वृद्ध फकीर था, उसके हाथ-पैर अत्यंत जर्जर हो गए थे, उससे उठने में भी तकलीफ होती थी। वह उठ भी नहीं पाया कि पांचवां जो लड़का बैठा था एक फकीर रक्काम, वह खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं आऊं? जल्लाद ने कहाः युवक पागल हो गए हो, जीवन कोई ऐसी चीज नहीं कि इतने जल्दी खोने को कोई उत्सुक हो? और तलवार कोई ऐसी चीज नहीं कि उसका स्वागत किया जाए? अभी तुम्हारी बारी नहीं आई, अभी मैं दूसरे को बुलाता हूं। रक्काम ने कहाः मौत जब आनी ही है, तो हर क्षण बारी है। रक्काम ने कहाः जब मौत आनी ही है, तो हर क्षण बारी है। और जब किसी भी आदमी का नाम बुलाया जाता है, तो मुझे लगता है, मेरा नाम बुला लिया गया है। और उसने कहा कि यह अच्छा ही होगा कि मैं आ जाऊं और नूरी बाद में मरे, रक्काम पहले मर जाए।

वह जल्लाद बोलाः कैसे पागल हो! किसी दूसरे की मौत अपने ऊपर लेना कैसा पागलपन है?

उस रक्काम ने कहाः प्रेम इसी पागलपन का नाम है।

जीवन का बहुत मूल्य है; लेकिन प्रेम का उससे भी ज्यादा मूल्य है। और जो लोग प्रेम को नहीं समझ पाते, वे ही केवल जीवन से अटके रह जाते हैं। और जो प्रेम को समझ लेते हैं, वे जीवन से मुक्त हो जाते हैं। और जो आदमी जीवन से मुक्त हो जाता है वह आदमी मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

स्मरण रखें, जो आदमी जीवन से मुक्त हो जाता है वह आदमी मृत्यु से मुक्त हो जाता है। मृत्यु केवल उनके लिए है जो जीवन से बंधे हैं। तो जीवन के ऊपर एक ऐसा बिंदु खोज लेना मृत्यु से मुक्त हो जाने का मार्ग है। अमृत उन्हें उपलब्ध होगा जो जीवन के ऊपर कुछ खोज लेते हैं। जो जीवन को भी किसी चीज पर समर्पित और देने को राजी हो जाते हैं, उस चीज का नाम सत्य है, या कोई चाहे तो कहे उस चीज का नाम प्रेम है, या कोई और कोई नाम देना चाहे तो कहे कि उस चीज का नाम परमात्मा है।

परमात्मा उस सत्ता का, उस सत्य का नाम है जिसके लिए जीवन समर्पित किया जा सकता है। जिससे जीवन कम मूल्य का पड़ जाता है। सत्य के लिए श्रम और सत्य के लिए जीवन का समर्पण जिसके हृदय में बोध हो, इस भांति का उत्पन्न होता है वही व्यक्ति साधना की पहली सीढ़ी पर पैर रख पाता है। इससे सस्ते में नहीं चलेगा। और इससे सस्ते में जो कहता हो और इससे ज्यादा शार्टकट और छोटे रास्ते जो बताता हो, वह झूठी बातें कह रहा है, और आपके आलस्य का शोषण कर रहा है। आपके आलस्य का बहुत शोषण हुआ है सारी जमीन पर। कोई कहता है, थोड़ी माला जपो; कोई कहता है, थोड़ा दान करो; कोई कहता है, थोड़ा रोज मंदिर जाओ; कोई कहता है, रोज सुबह किसी शास्त्र का पाठ कर लो, सब ठीक हो जाएगा। कोई कहता है, इतना भी करने की जरूरत नहीं, भगवान का नाम रटते रहो, तो सब ठीक हो जाएगा।

ये बिल्कुल झूठी बातें हैं। किसी नाम के रटने से कुछ भी नहीं होगा। और भगवान इतना नासमझ नहीं कि आपके नाम रटने से बहकाया जा सके। और भगवान इतना नासमझ नहीं कि आपकी स्तुतियां उसे खुश कर सकें और उसके दंभ को प्रभावित कर सकें, उसके पास कोई दंभ नहीं है। उसके पास कोई दंभ नहीं है।

एक फकीर था, एक साधु था। उसने अपने एक युवक को जो उसके पास साधना करने आया, उससे पूछा कि तुम क्या करते हो? वह बोला, मैं सुबह से शाम तक भगवान का नाम लेता हूं। वह फकीर बोला कि मेरे पास रुक जाओ और सुबह से सांझ तक मेरा नाम लो, मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूंगा। मैं इतना घबड़ा जाऊंगा तुमसे, मैं इतना परेशान हो जाऊंगा कि जिसका कोई हिसाब नहीं। प्रसन्न तो मैं कैसे होऊंगा उससे? नाम लेने से कोई कैसे प्रसन्न हो जाएगा? और प्रसन्नता क्या कोई इतनी सस्ती बात है? और परमात्मा क्या प्रसन्न और अप्रसन्न होता है? और क्या आपको पता है उसका कोई नाम है? परमात्मा का कोई नाम नहीं। और जो सोचता हो कि यह परमात्मा का नाम है, वह किसी मनुष्य-कल्पित नाम को ले रहा होगा। और परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं; कोई सोचता हो कि मैं उसका ध्यान कर रहा हूं; तो वह किसी आदमी की बनाई हुई ईजाद का ध्यान कर रहा होगा।

सारी मूर्तियां आदमियों की बनाई हुईं और आदमी की शक्लों में हैं। सारे नाम आदमियों को दिए गए और आदमियों के द्वारा दिए गए हैं। न परमात्मा का कोई नाम है, न उसकी कोई मूर्ति है, न उसकी कोई प्रतिमा है।

इसलिए कोई सस्ता उपाय मत खोजना। माला फेर लेने से और गुरिए सरका लेने से और नाम रट लेने से कोई सत्य उपलब्ध नहीं होता। सत्य बहुत मंहगी बात है। इतना आसान नहीं। और स्मरण रखें कि इन चीजों को मैं जो कह रहा हूं गलत हैं। इसलिए कह रहा हूं कि परमात्मा का मूल्य मेरे मन में बहुत ज्यादा है। इतना सस्ता नहीं खरीदा जा सकता, इसलिए इनको गलत कह रहा हूं।

परमात्मा को खरीदने का एक ही रास्ता हैः जो अपने को मूल्य में देने के लिए राजी हो जाए। जो स्वयं को देने को राजी होता है वह सत्य को पाने का अधिकारी हो जाता है। एक ही विनिमय है, एक ही रास्ता और एक ही उपाय हैः श्रम और स्वयं का परिपूर्ण देने का साहस। यह पहली शर्त है। इस शर्त को जो राजी हो जाता है उसके भीतर अदम्य संकल्प का जन्म होता है। जो इस बात के लिए राजी हो जाता है, जो इतनी हिम्मत करता है, जो इतना साहस करता है उसके भीतर बड़ी ऊर्जा, बड़ी शक्ति उत्पन्न होती है। उसके कण-कण जाग जाते हैं, उसके हृदय की सारी सोई शक्तियां परिपूर्ण रूप से संलग्न, इकट्ठी, एकजुट हो जाती हैं और वह अपने भीतर एक ऊर्जा के आरोहण को अनुभव करता है।

दूसरी बात है, सत्य की खोज में, सत्य की तलाश मेंः श्रम, आत्म-श्रद्धा, संकल्प का आरोहण।

इनके साथ दूसरी शर्त हैः अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार।

धर्म कोई टेक्नालॉजी नहीं है कि हमने कोई मंत्र पढ़ा और काम हो गया। हमने बटन दबाई और पंखे चलने लगे। धर्म कोई टेक्नालॉजी नहीं है। कोई धर्म यंत्र नहीं है कि कहीं दबाया और काम शुरू हो गया। धर्म तो समग्र जीवन-परिवर्तन है। उसमें कोई एक बिंदु नहीं छूना, उसमें तो पूरे जीवन को ही छूना पड़ेगा। और धर्म तो पूरे जीवन को बदलने की बात है। इसलिए कोई सोचता हो कि आधा घड़ी दस-पांच मिनट किसी कोने में बैठ कर हमने भगवान का, भगवान के लिए समय दिया तो काम हो गया, तो गलती में है। जो भगवान को पाना चाहता है उसकी प्रार्थना, उसकी आराधना, उसका कीर्तन, उसका ध्यान, वह जो भी नाम देता हो सतत हो जाएगा, वह चौबीस घंटे का हिस्सा हो जाएगा।

धर्म की साधना खंडित साधना नहीं है--अखंड साधना है। उसे तो सोते से जागते तक, जागते से सोते तक करना होगा। वह कोई ऐसी बात नहीं है कि उससे छुट्टी हो सके। मैं आपको कहूं, धर्म से कोई छुट्टी नहीं होती। एक चोर छुट्टी मना सकता है, दो दिन चोरी न करे, लेकिन एक धार्मिक आदमी छुट्टी नहीं मना सकता है कि दो दिन धार्मिक न रहे। धर्म से कोई छुट्टी नहीं है। साधु के लिए कोई छुट्टी नहीं है कि वह तेईस घंटे साधु रहे और एक घंटा छुट्टी मना ले। एक घंटा छुट्टी मना ले, तेईस घंटे खराब हो जाएंगे। एक क्षण को भी छुट्टी नहीं मनाई जा सकती, धर्म के जगत में कोई अवकाश, कोई छुट्टी नहीं होती। सतत और अखंड, सतत और अखंड, सुबह से सांझ, सांझ से सुबह एक-एक श्वास में उसको साधना होगा।

इसलिए दूसरा तथ्यः अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार। जीवन में मूर्च्छा न हो, जीवन के व्यवहार में मूर्च्छा न हो; हम कोई काम सोए-सोए न करें, हर काम में जागरण हो।

एक फकीर एक गांव से निकला, कुछ लोगों ने उसका अपमान किया और गालियां दीं। जब वे गालियां दे चुके, उस फकीर ने कहा कि मैं कल आऊंगा और इनके उत्तर दे दूंगा। वे लोग बोले, पागल हुए हो, गालियों के उत्तर तत्क्षण दिए जाते हैं। वह आदमी बोला, ऐसी हमारी आदत नहीं, जब तक कुछ बात को ठीक से सोच न लें, समझ न लें, तब तक उत्तर नहीं देते। चौबीस घंटे बाद आऊंगा और उत्तर दूंगा।

और क्या आपको पता है कोई चौबीस घंटे बाद गालियों का उत्तर दे सकता है? ऐसा समर्थ आदमी आज तक नहीं हुआ जो चौबीस घंटे बाद गालियों का उत्तर दे सके। चौबीस घंटे में वह इतना सजग हो जाएगा कि उसके भीतर से गालियां निकलनी मुश्किल हैं। लेकिन जो सजगता को और गहरा करते हैं उन्हें उसी क्षण भी गालियां निकलनी असंभव हो जाती हैं। जितनी सजगता गहरी होती है, जितना होश जाग्रत होता है, जितना

विवेक प्रतिष्ठित होता है उतना ही, उतना ही उनके जीवन से जो गलत है वह होना असंभव हो जाता है। होश को क्रमशः अपने प्रत्येक जीवन-व्यवहार में विकसित करने की जरूरत है।

एक दिन एक आदमी बुद्ध से मिलने आया, वह बैठा था उनके सामने और पैर का अंगूठा हिलाता था। उस आदमी ने पूछा कि मैं पूछने आया हूंः सत्य क्या है? बुद्ध ने कहाः इसे बाद में पूछेंगे। क्या मैं यह पूछूं कि तुम्हारा पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? वह बहुत हैरान हो गया होगा। इतने बड़े मनीषी के पास सत्य को पूछने गया है, और वे वह भी कौन सी क्षुद्र बात की बातें कर रहे हैं कि तुम्हारे पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा है? उसने कहा, इसे छोड़िए, इससे क्या मतलब? बुद्ध ने कहाः इससे बहुत मतलब है। जिसे अपने अंगूठे हिलने के भी कारण का पता नहीं, वह सत्य की खोज कैसे करेगा? जिसने अभी क्षुद्र को नहीं सम्हाला, वह विराट को कैसे सम्हाल सकेगा? बुद्ध ने कहाः मेरे कहते ही, पूछते ही तुम्हारा अंगूठा बंद भी हो गया। यह क्यों हुआ? तो बंद कर लिया उसने। उस आदमी ने कहाः मुझे कुछ पता ही नहीं था कि अंगूठा हिल रहा है। बुद्ध ने कहाः तुम्हारा शरीर है और तुम्हें पता नहीं कि हिलता है? तुम खतरनाक आदमी हो, तुम किसी की जान भी ले सकते हो और कह सकते हो कि मुझे पता नहीं कि मेरा हाथ उसके सिर पर कैसे पड़ गया। और तुम्हारा जीवन पाप से भरा हो जाएगा, क्योंकि तुम्हें यह भी पता नहीं होगा कि कोई विचार क्यों चलता है, कोई वासना क्यों उठती है, तुम्हारा सारा जीवन यांत्रिक है। इसको मैं कहता हूं--मूर्च्छा।

ऐसा व्यक्ति जिसका शरीर, जिसका चित्त, जिसका विचार अकारण और मूर्च्छित चल रहा हो, ऐसा व्यक्ति धर्म के जगत में विकास नहीं कर सकता है। वहां तो बड़ी पवित्रता और बड़ी निर्दोषता होगी, बड़ी सरलता होगी तब गति होगी। वह सरलता, वह निर्दोषता अमूर्च्छित जीवन से आनी शुरू होती है। वह होशपूर्वक जीवन जीने से शुरू होती है। एक-एक बात को, एक-एक विचार को, वाणी को, आचरण को स्मरणपूर्वक देखना होगा, वह क्यों हो रहा है? और आप हैरान हो जाएंगे। अगर आप अपने भीतर यह विचार सजग कर लें कि मेरे भीतर कोई बात क्यों हो रही है तो आप बहुत हैरान होंगे।

अगर यह सजगता गहरी है, तो जो-जो गलत है, वह होना बंद हो जाएगा। क्यों? क्योंकि गलत के होने के लिए मूर्च्छा चाहिए। और इसीलिए जो लोग ज्यादा गलतियां करना चाहते हैं, उनके लिए मादक द्रव्य हैं; और मूर्च्छित हो जाएं तो और ज्यादा गलतियां करना उनको आसान हो जाता है। एक शराबी जो गलतियां कर सकता है वह बिना शराब पीए नहीं कर सकता। एक क्रोधी जो गलतियां कर सकता है वह बिना क्रोध में नहीं कर सकता। क्रोध भी नशा है। क्रोध की स्थिति में सारे शरीर में मादक द्रव्य छूट जाते हैं, मादक रस छूट जाते हैं और मन विशाक्त और मूर्च्छित हो जाता है। वैसे ही कोई ऊपर से मादक द्रव्य ले ले, इंटाक्सिकेंट ले ले, तो फिर वह ज्यादा गलतियां कर सकता है।

अगर पाप करने हों, तो नशा बहुत जरूरी है। और अगर धर्म में उठना हो, तो सब नशे छोड़ देने की आवश्यकता है। कुछ नशे हैं जो हम बाहर से लेते हैं, कुछ नशे हैं जो हमारे भीतर होते हैं। उन दोनों को क्रमशः क्षीण करने से, सजगता को जगाने से व्यक्ति में अमूर्च्छा पैदा होती है। उस अमूर्च्छा को महावीर ने विवेक कहा, बुद्ध ने अप्रमत्तता कहा, क्राइस्ट ने अवेयरनेस कहा, या किसी और ने कुछ और कहा होगा। ऐसा होश, तो जीवन में भूल होनी मुश्किल हो जाती है।

जनक के समय में ऐसी बात हुई, एक युवक ने अपने गुरु को पूछा कि मैं अब सत्य की अंतिम खोज करना चाहता हूं, तो कहां जाऊं? उसके गुरु ने कहाः हमारे राज्य का जो राजा है, उसके पास चले जाओ। वह युवक बोलाः राजा के पास, किसी साधु के पास भेजते तो समझ में भी आता। लेकिन गुरु ने कहा है, तो वह गया। जब वह गया और राजमहल में पहुंचा, तो उसने देखा, वहां संध्या को बड़ा आयोजन था और बड़ी वेश्याओं के नृत्य चलते थे, बड़ी सुरा ढाली जाती थी और जनक उनके बीच बैठा था। वह युवक सोचाः यह क्या पाप में मैं आ

गया और यहां कैसे ब्रह्मज्ञान और सत्य का पता चलेगा? लेकिन भेजा था गुरु ने, तो खड़ा रहा। जब सारा समारोह समाप्त हुआ तो राजा की यह स्थिति देख कर उसका मन नमस्कार करने को भी नहीं हुआ, वह खड़ा ही रहा; खुद जनक ने नमस्कार किया और कहा, युवक कैसे आए हो? उस युवक ने कहाः आया तो था किसी ख्याल से, लेकिन अब तो कहना भी गलत है। जो देखा आंख से अब आपसे यह कहना कि मैं सत्य खोजने आया था आपके पास, बड़ा, बड़ा भद्दा मालूम होता है। मेरी हिम्मत भी नहीं पड़ती, विचार भी नहीं उठता।

जनक ने कहाः अब आ ही गए हो तो रात कम से कम ठहर जाओ, सुबह वापस लौट जाना। ठीक ही है, यहां कहां सत्य मिलेगा? रात हो गई थी, वह युवक ठहर गया। उसे अच्छे भोजन कराए गए, उसे बिस्तर पर लिटाया गया। लेकिन जब जनक उसे बिस्तर पर छोड़ कर गया, तो वह देख कर हैरान हो गया। जिस बिस्तर पर वह सोया है, छत से दो नंगी तलवारें बिल्कुल कच्चे धागे से लटकी हुई हैं। वह नीचे बिस्तर पर है ऊपर वे नंगी तलवारें कच्चे धागे से लटकी हुई हैं। इतनी ऊंची हैं कि उनको निकाल कर भी नहीं रख सकता। और उसी बिस्तर पर उसे सोना है, कमरे में और कोई जगह भी नहीं। जनक बाहर से दरवाजा बंद कर गया है। अब बड़ी मुसीबत हो गई। वह करवट भी नहीं लेता, पड़ा है चुपचाप, देख रहा है कि वे कब गिर जाएं, जरा हवा का झोंका आ जाए तो तलवार नीचे गिर जाएं। रात भर आंख नहीं झपीं, रात भर सजग पड़ा रहा कि कहीं तलवार न गिर जाएं।

सुबह जनक आया और उसने कहाः रात नींद तो ठीक आई? कोई बिस्तर में असुविधा तो नहीं हुई? कक्ष ने कोई दिक्कत तो नहीं दी? कोई तकलीफ तो नहीं थी? वह युवक बोलाः कुछ पता नहीं कक्ष कैसा था, बिस्तर कैसा था, और नींद आई ही नहीं, इसलिए नींद आई कि नहीं यह सवाल नहीं। जनक ने पूछाः क्या हुआ? उसने कहाः ये दो नंगी तलवारें रात भर सजग किए रहीं, होश बना रहा भीतर कि अगर जरा सोया तो मृत्यु निकट है। जनक ने कहाः रात जब वह नृत्य में मैं बैठा था और जब वेश्याएं नाचती थीं, तब तलवारें मेरे ऊपर लटकी थीं। वे तलवारें तुम्हें दिखाई नहीं देतीं, अभी युवक हो, अभी वृद्ध की आंखें नहीं मिलीं। जैसे-जैसे वृद्ध होने लगा हूं वैसे-वैसे तलवारें हर वक्त लटकी रहेंगी, और धागा बहुत कच्चा है, इतना कच्चा है कि आज तक हमेशा ही टूटता रहा है और हर आदमी पर आखिर में टूट ही जाता है। तो इसलिए नाच देखता था लेकिन नाच में था नहीं। जैसे रात तुम सोए थे लेकिन सोए नहीं थे। जनक ने कहाः ऐसी सजगता चौबीस घंटे बनी रहे। ऐसी सजगता का नाम अमूर्च्छित जीवन-व्यवहार है। ऐसा सजग व्यक्ति कुछ भी गलत नहीं कर सकेगा, ऐसा सजग व्यक्ति कुछ भी--जिसको हम पाप कहें, जिसको हम बुरा कहें--ऐसा उससे असंभव हो जाएगा। अमूर्च्छित आचरण ही जीवन में धर्म को प्रतिष्ठा देता है और गति देता है। यह दूसरा तत्व है।

पहला तत्व हुआः श्रमनिष्ठा, स्वयंनिष्ठा, आत्म-श्रद्धा।

दूसरा तत्व हुआः अमूर्च्छित जीवन-आचरण, सजगता, अप्रमत्तता, विवेक।

ये दोनों तत्व बड़े मूल्य के हैं। इन दोनों का संयुक्त प्रयोग हो, तो जीवन का परिवर्तन सुनिश्चित है। तीसरा तत्व हैः सतत श्वास-श्वास में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम की ओर उन्मुखता। हमारी जिस तरफ दिशा होती चित्त की क्रमशः हमारा चित्त उसी दिशा में गति कर जाता है। जिस बात को हम निरंतर-निरंतर विचारते हैं, जिस बात की निरंतर ऊहा चलती है, जिस बात का निरंतर प्राणों पर आघात होता है, उस तरफ हमारी दिशा हो जाती है, हम उस तरफ प्रवाहित होने लगते हैं। अगर दृष्टि सत्य पर, शिव पर और सुंदर पर बनी रहे, अगर चौबीस घंटे इसका स्मरण हो कि कुछ भी असत्य, कुछ भी असुंदर, कुछ भी अशिव हमसे न हो, इसका बोध रहे, तो जीवन के परिवर्तन में भूमिका निर्मित होने लगती है, हमारी आंख फिर जाती हैं।

सूरज तो बहुत दूर है, और सूरज पर अभी पहुंच जाना संभव नहीं, लेकिन हम सूरज के साथ दो काम कर सकते हैं। एक काम तो है कि सूरज की तरफ आंखें करके खड़े हों, और एक काम है कि पीठ करके खड़े हो जाएं। दोनों स्थितियों में सूरज उतने ही दूर रहेगा। अगर हम नापें, अगर हम नापें, अगर हम भूगोल के विज्ञाता से पूछें, अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, गणितज्ञ से पूछें, तो वह कहेगाः सूरज की तरफ पीठ करो या मुंह करो, सूरज की दूरी आपसे बराबर एक सी रहेगी, कोई फर्क नहीं है। विज्ञान की दृष्टि में कोई फर्क नहीं है; धर्म की दृष्टि में फर्क है, फासला बहुत ज्यादा है। जो आदमी पीठ किए है वह सूरज से बहुत ज्यादा दूर है। और जो आदमी उसी जगह पर खड़ा है और सूरज की तरफ मुंह किए है, वह सूरज के बहुत करीब है। गणित के हिसाब से कोई फासला नहीं, धर्म के लिहाज से बहुत फासला है क्योंकि जो पीठ किए है वह आज नहीं कल दूर होता चला जाएगा और जो मुंह किए है वह आज नहीं कल पास होता चला जाएगा।

असल में उन्मुख हो जाना ही निकट हो जाना है। अगर पूरी उन्मुखता हो तो निकटता फलित हो जाती है। जिस तरफ आंखें उठ जाएं उस तरफ गति शुरू हो जाती है। और जो फूलों का स्मरण करता है जाने-अनजाने सुवास और सुगंध उसके जीवन में व्याप्त होने लगती है। हम जिस बात का चिंतन करते हैं, जिस बात का मनन करते हैं, जिस बात पर हमारी दृष्टि लगी रहती है, जिसका हमें ध्यान बना रहता है क्रमशः, क्रमशः हमारे जीवन को वह परिवर्तन, वह ऊर्ध्वीकरण, वह विकास, वह आरोहण देने लगता है। जो जैसा अनुभव करता रहता है चौबीस घंटे वह वैसा ही एक दिन बन जाता है। इसलिए कोई पाप का स्मरण न करें, पाप का स्मरण घातक है। कोई हीनता का स्मरण न करें, हीनता का स्मरण घातक है। कोई नीचाइयों का चिंतन न करें, वैसा चिंतन बहुत, बहुत जीवन को नीचे ले जाने, उतारने और पतन करने में सहयोगी है। जो उद्दात है, जो श्रेष्ठ है, जो सूर्य की तरफ भास्वर है, जो दूर आलोक को दे रहा है, उस पर दृष्टि बनी रहे। सत्य पर, शिव पर, सुंदर पर दृष्टि बनी रहे तो जीवन में क्रमशः उनके प्रति ग्रहणशीलता पैदा होती है और गति उपलब्ध होती है।

चौथा तत्व हैः सोते-जागते, उठते-बैठते, जैसा मैंने कहा, सत्य, शिव, सुंदर का स्मरण बना रहे। वे दूर हैं, लक्ष्य हैं, उन्हें पाना है, उन तक पहुंचना है। वैसे ही दूसरा सूत्र है। चौथा सूत्रः सत्-चित्त्-आनंद का बोध बना रहे। मैं सत्-चित्त्-आनंद का हिस्सा हूं; मैं सच्चिदानंद हूं, इसका बोध बना रहे। एक है लक्ष्य, वह दूर है, उसे पाना है। एक है भाव, उसे निरंतर धीरे-धीरे पिरोना है और अपने भीतर प्रवेश देना है। जैसे-जैसे जो-जो व्यक्ति जो-जो बात निरंतर-निरंतर भीतर पिरोता है, उतनी उसमें गति करती जाती है, उतनी डैप्थ में, उतनी गहराई में उतरती जाती है। हमारे चिंतन बड़े अजीब हैं, हम चौबीस घंटे असत का चिंतन करते हैं, दुख का चिंतन करते हैं, अचित का चिंतन करते हैं। हमारा चौबीस घंटे चिंतन सच्चिदानंद के विपरीत है। हमारा मनन उसके विपरीत है, हमारी सारी चित्त-दशा उसके विपरीत है। और इसलिए परमात्मा की तरफ हमारे पैर नहीं बढ़ पाते।

सोचना और जानना है निरंतर। क्राइस्ट ने कहा हैः दि किंगडम ऑफ दि गॉड इ.ज विदिन यू। कहा कि तुम्हारे भीतर है परमात्मा का राज्य। उपनिषदों ने कहाः तत्त्वमसि, वह तुम्हारे भीतर है ब्रह्म। वह बुद्ध कहते हैंः वह तुम्हारे भीतर। महावीर कहते हैंः तुम्हारे भीतर। किसलिए? इसलिए कि अगर यह बोध, अगर यह ख्याल, अगर यह भाव-दशा अनुभव में प्रविष्ट हो जाए। अगर कोई व्यक्ति चलते और उठते अनुभव करने लगे, अगर उसे यह ख्याल रहने लगे--जब वह चले तो वह जाने कि परमात्मा चल रहा है, जब वह बोले तो जाने कि परमात्मा बोल रहा है, जब वह कोई कार्य करे तो जाने कि परमात्मा कर रहा है, तो क्या होगा, तो क्रांति घटित हो जाएगी। तब वह ऐसी बात नहीं बोल सकेगा जो कि परमात्मा के लिए नहीं बोलनी चाहिए। तब उससे ऐसे काम बंद होने लगेंगे जो कि परमात्मा से नहीं होने चाहिए।

मैंने सुना है, एक चोर था एक नगर में। बड़ा चोर था, बड़ी उसकी ख्याति थी चोरी में। वह एक दफा एक साधु के दर्शन को गया। उसने देखा, साधु के पास लोग बहुत रुपये भेंट कर जाते हैं। सांझ तक देखता रहा बैठ

कर। अनेक लोग आए, अनेक बहुमूल्य चीजें भेंट कर गए। उसने सोचाः यह बड़ा पागलपन है, हम चोरी करते हैं, रात-दिन श्रम करते हैं, ऐसा श्रम करते हैं जिसको कोई आदर नहीं देता, खतरा हमेशा पकड़े जाने का, इससे तो साधु बन जाना बेहतर है। यहां लोग धन लाते हैं, वहां हमें लेने जाने पड़ता है। लोग भी कैसे पागल हैं। हम लेने जाते हैं तो उपद्रव करते हैं, यहां खुद ही दे जाते हैं। उसने कहा, धन ही चाहना है तो चोर से साधु बन जाना बेहतर है। उसने साधु के सारे ढंग देखे, उसने सब देख लिया दो-चार दिन में हिसाब कि साधु के ढंग क्या हैं, कैसे वस्त्र पहनता, कैसे धूनी लगाता, कैसा क्या करता है, वह सब उसने देखा और वहां से राजधानी चला गया। उसने कहा, छोटे गांव में क्या बैठना, जब साधु ही बनना है तो राजधानी में बन जाएंगे। इसलिए इस वक्त भी हमारे मुल्क के सारे साधुओं का रुख राजधानी की तरफ है, सारे साधु राजधानी की तरफ जाते हैं। छोटे गांव में क्या साधु बनना, उसने सोचा। वह राजधानी में जाकर बैठ गया। और वह तो सब देख कर आया था। उतना अच्छा साधु भी नहीं कर सकता, वह सब सीख कर आया था। उसका काम तो बहुत ही व्यवस्थित था। उसमें तो भूल-चूक खोजनी कठिन थी। सब गणित से हिसाब लगाया था। होशियार तो आदमी था ही, चोरी में निष्णात था, साधुता में भी निष्णात हो गया। लोग, बड़े-बड़े लोग आने लगे। अदभुत था। उसने देख लिया, साधु, रुपया आता है लात मार देता है। साधु लात नहीं मारता था, वह उठा कर आग में डालने लगा। लोगों ने कहाः अदभुत त्यागी है। पैसे की तरफ आंख फेर लेता था। जितनी आंख फेरने लगा, उतना रुपया आने लगा; जितना लात मारने लगा, उतनी धन-संपत्ति दौड़ने लगे। जितना लोगों से कहने लगा, मेरे पैर मत छूओ, उतने लोग पैरों पर गिरने लगे। सारी राजधानी चकित। और साधु की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी।

पहले ही दिन जब उसकी प्रतिष्ठा का पूरा का पूरा प्रभाव फैला और हजारों-लाखों रुपये उसके चरणों में चढ़े। रात वह सोचने लगा, इन्हें लेकर भाग जाऊं; लेकिन उसे ख्याल आया, लेकिन उसे ख्याल आया, एक नकली साधु को इतना मिलता है, तो असली को कितना मिलता होगा? दूसरे दिन सुबह उसने सच में ही रुपये आग में डाल दिए। दूसरे दिन सुबह उसने सच में ही रुपये आग में डाल दिए। नकली ही सब किया था। लेकिन ख्याल यह आया कि नकली को इतना मिल सकता है, तो असली को कितना मिलता होगा? एक दिशा में झूठा ही उन्मुख हुआ था। पवित्रता की दिशा में झूठा ही उन्मुख हुआ था। लेकिन आंख उस तरफ गई, तो पवित्रता ने पकड़ लिया। साधुता पर भाव गया, तो साधुता ने पकड़ लिया। असाधुता बड़ी कमजोर है, पाप बहुत कमजोर है, असत्य बहुत कमजोर है। आंख भर चली जाए सत्य की तरफ, प्रभु की तरफ, तो पकड़ लेता है। बड़ा ग्रेवीटेशन है वहां। ग्रेवीटेशन का, गुरुत्वाकर्षण का सबसे बड़ा केंद्र है वहां। एक दफा आंख भी चली जाए--तो चौबीस घंटे जिसे परमात्मा को साधना है उसे अनुभव करना चाहिए मैं सत्य का अंश हूं, उसे अनुभव करना चाहिए मैं परम चैतन्य का हिस्सा हूं, उसे अनुभव करना चाहिए मैं परम आनंद में प्रतिष्ठित हूं। इस भांति उसकी धारा प्रवाहित होगी। धीरे-धीरे परिवर्तन के झोंके आने शुरू होंगे। धीरे-धीरे उसकी आंख मुड़ेगी। और एक जन्म में नहीं, अगर अनेक जन्मों में भी आंख मुड़ जाए, तब भी जल्दी मुड़ गई ऐसा समझना।

ये चार सूत्र साधने के हैं और पांचवां सूत्र प्रतीक्षा करने का है। धर्म के जगत में अधैर्य नहीं चलता। जो लोग अधैर्य से काम करेंगे वे कभी प्रभु को नहीं पा सकते। वहां तो अनंत धैर्य चाहिए। अनंत को जब पाना है तो अनंत धैर्य की भूमिका होनी चाहिए। तो जो व्यक्ति सत्य को साधने चला हो उसे अनंत प्रतीक्षा करनी चाहिए।

एक महिला मेरे पास आती थीं, उन्होंने मुझसे कहा, मुझे भगवान के दर्शन करने हैं। मैंने कहाः आपकी बात कुछ ऐसी लगती है कि बहुत जल्दी करने होंगे। वह बोली, मैं जितनी जल्दी हो सके, करना चाहती हूं। मैंने कहाः जितनी जल्दी भगवान का दर्शन हो जाए भगवान में उतना ही कम अर्थ मालूम होगा। और अगर एकदम अभी हो जाए, तो शायद विश्वास भी नहीं आएगा कि जिसके दर्शन हुए वह भगवान है। क्योंकि उस पर तो विश्वास उतनी ही गहरी प्रतीक्षा से आएगा, जितना शुद्ध जल पाना हो उतना गहरा खोदना होगा। जितनी

बहुमूल्य बात पानी हो उतनी प्रतीक्षा करनी होगी। मौसम के फूल के पौधे बोते हैं, जल्दी निकल आते हैं, जल्दी मर भी जाते हैं। बड़े वृक्ष बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, बड़ी मुश्किल से बड़े होते हैं, फिर उतना टिकते हैं।

परमात्मा में जिसकी प्रतिष्ठा होनी है उसे तो परम धैर्य से प्रतीक्षा करनी होगी। जो अधैर्य करेगा, वह नहीं जा सकता। तो मैंने उन महिला को कहा, इतने अधैर्य से मत पूछो, प्रयास करो और प्रतीक्षा करो। उन्होंने दो-चार दिन मैंने जो कहा किया। वह तीसरे दिन मेरे पास आई, बोली, अभी तक कोई दर्शन नहीं हुआ, अभी कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैंने उनसे कहाः बहुत मुश्किल है। आपको कुछ भी होना मुश्किल है। इतने अधैर्य से जो झपटना चाहता है वह नहीं पा सकेगा। परमात्मा को झपटा नहीं जा सकता, केवल ग्रहणशीलता भर होती है। जैसे सुबह सूरज निकलता है तो हम अपने द्वार खोल देते हैं, सूरज को खींच कर कैसे भीतर लाएंगे? द्वार खोल सकते हैं, जब सूरज निकलेगा तो प्रकाश भीतर आएगा।

परमात्मा का आना प्रकाश की भांति है और हमारी साधना द्वार खोलने की भांति है। उसे खींच के गठरियों में बांध कर लाया नहीं जा सकता कि हम बाहर जाएं और प्रकाश को गठरियों में बांधें और भीतर ले आएं। ऐसा कोई रास्ता नहीं है। तो जो चाहता है कि तीव्रता से हो जाए, अभी हो जाए, इसी क्षण हो जाए, वह परमात्मा को समझ नहीं रहा। केवल द्वार खोला जा सकता है। और द्वार खोलने का क्या अर्थ है? जितनी गहरी प्रतीक्षा उतना द्वार खुला हुआ, जितना अधैर्य उतना द्वार बंद। जितना धैर्य उतना द्वार खुला, अगर अनंत धैर्य हो तो पूरा मकान द्वार हो जाता है, दीवालें सब गिर जाती हैं और तब प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी चर्चा को पूरा कर दूंगा। एक बहुत पुराने समय में एक बड़ी झूठी कहानी है। नारद एक गांव से निकले, एक फकीर था, वह वहां माला जपता था। वृद्ध था, सौ वर्ष उसकी उम्र थी। उसने नारद को कहा कि मैं सुनता हूंः तुम निरंतर भगवान से साक्षात्कार के लिए जाते हो, जरा उनसे पूछना कि मेरी मुक्ति में कितनी देर और है? नारद ने कहाः जरूर पूछ लूंगा। जब इतनी उत्सुकता है मुक्ति के लिए तो जरूर पूछ लूंगा। उन्होंने भगवान से पूछा या नहीं; लेकिन लौटे तो उन्होंने उस फकीर को कहा कि मैंने पूछा था, वे बोले कि अभी तीन जन्म और लग जाएंगे। उस फकीर ने माला नीचे पटक दी, उसने कहा कि क्या अन्याय हो रहा है? इतने दिन से हम प्रार्थना और पूजा कर रहे हैं और अभी तीन जन्म और लग जाएंगे? और मुझसे पीछे जो आए वे आगे निकल गए। यह निपट अन्याय है मेरे ऊपर। नारद ने कहाः बड़ी मुश्किल, हम क्या करें। क्योंकि जो मुक्ति को इतने जोर से मांग रहा है वह मुक्ति से ही बंध जाता है। मुक्ति ही उसका बंधन हो जाती है, वह मुक्त कैसे होगा? क्योंकि इतने जोर से मांगना ही तो बंधन है। न मांगना मुक्ति है। चेष्टा हो और मांग न हो, तो परमात्मा इसी क्षण उपलब्ध है। श्रम हो और आकांक्षा न हो, तो परमात्मा इसी क्षण उपलब्ध है।

और नारद ने कहाः एक घटना आप ही जैसी और घटी है। जब मैं आपके पास से गया था, तो पास में ही एक युवा संन्यासी था, वह नाच रहा था वीणा को लेकर, उसी दिन दीक्षित हुआ था। मैंने उससे पूछाः तुम्हें भी पूछना है परमात्मा से कि कितनी देर लगेगी? वह कुछ बोला नहीं, हंसने लगा। मेरे प्रश्न पर हंसने लगा, कुछ बोला नहीं। लेकिन मैंने उसके लिए भी पूछा। और जब मैं लौट कर उसके पास गया और मैंने कहा, मित्र, बड़ी मुश्किल है; मैं डर गया क्योंकि जब आप तीन जन्म में माला नीचे पटक दिए, तो वह क्या करेगा पता नहीं, क्योंकि परमात्मा ने जो कहा वह बहुत लंबी बात थी। वह युवक बोलाः क्या बोले वे? तो मैंने उससे कहाः तुम जिस वृक्ष के नीचे नाचते हो, उसमें जितने पत्ते हैं, भगवान ने कहा, उतने ही जन्म और लग जाएंगे अभी मुक्ति में। वह युवक वापस नाचने लगा और उसने कहाः तब तो पा ही लिया, जमीन पर कितने पत्ते हैं, इतने थोड़े से पत्ते! तब तो पा ही लिया। इतने ही जन्म! तब तो पा लिया। जमीन पर कितने पत्ते हैं! और कितने अनंत जन्म हो सकते हैं! और वीणा उसकी वहीं गिर गई और वह उसी क्षण मुक्ति को उपलब्ध हो गया। उसी क्षण!

यह भाव-दशा, यह अनंत प्रतीक्षा का बोध उसी क्षण साधना को परिपूर्णता पर पहुंचा देता है।

तो मैंने चार सूत्र कहे साधने की दृष्टि से। एक सूत्र कहा भूमिका की दृष्टि से। अगर इन पांच सूत्रों पर जीवन निर्धारित हो, अगर इन पांच सूत्रों पर जीवन को निर्मित किया जाए, तो कोई भी वजह नहीं है कि कोई भी मनुष्य आनंद को, परम सत्य को, अमृत को जानने से वंचित रहे। सबका अधिकार है, सबको मिल सकता है। लेकिन जो अपने अधिकार के लिए चेष्टा नहीं करेंगे वे अपने अभाग्य के स्वयं ही जिम्मेवार हैं, कोई दूसरा नहीं।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

धर्म की यात्रा

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

सिकंदर विश्वयात्रा पर निकला हुआ था। भारत की ओर आते समय रास्ते में एक फकीर डायोजनीज से वह मिलने गया। डायोजनीज की बड़ी ख्याति थी। डायोजनीज एक नग्न फकीर था और सिकंदर उससे मिलने जाए, इसकी खबर भी दूर-दूर तक पहुंच गई। बहुत से लोग डायोजनीज के झोपड़े पर इकट्ठे हो गए थे। सिकंदर से पहले सिकंदर के दो सेनापतियों ने जाकर डायोजनीज को कहाः महान सिकंदर तुमसे मिलने आ रहा है, उसके स्वागत के लिए तैयार हो जाओ। डायोजनीज अपने झोपड़े के बाहर बैठा था, वह जोर से हंसने लगा और उसने कहाः जो स्वयं अपने को महान समझता है, उससे छोटा आदमी और दूसरा नहीं होता।

सिकंदर आ गया था, डायोजनीज बाहर बैठा हुआ सुबह की धूप ले रहा था। सर्दी के दिन थे। सिकंदर ने कहाः कि मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकूं, तो मुझे खुशी होगी। डायोजनीज ने कहाः धूप आ रही थी मेरे शरीर पर, तुम बीच में खड़े हो गए और धूप आनी बंद हो गई, इतनी ही कृपा करो, धूप के मार्ग से हट जाओ। और यह भी प्रार्थना करता हूं, तुम्हारे हाथ में बहुत ताकत मालूम होती है, तुम न मालूम कितने लोगों के जीवन की धूप छीन सकते हो, इतना ध्यान रखना, तुम किसी के जीवन के लिए छाया न बनो तो बड़ी कृपा होगी।

सिकंदर को इस तरह की बात सुनने का कोई ख्याल न था। फिर भी उसने कहाः मैं तुमसे मिल कर खुश हुआ हूं। और अगर मुझसे परमात्मा पूछता कि तुम सिकंदर होना चाहते हो या डायोजनीज, तो नंबर दो पर मेरा चुनाव डायोजनीज होने के लिए होता।

लेकिन डायोजनीज ने कहाः अगर परमात्मा मुझसे पूछता कि तुम सिंकदर होना चाहते हो या डायोजनीज, तो मैं डायोजनीज के अतिरिक्त और कुछ भी होना पसंद न करता। और सिंकदर होना तो कभी भी नहीं। सिकंदर ने पूछाः सिकंदर होने में ऐसी कौन सी बुराई है? डायोजनीज ने कहाः मैं तो सिकंदर होने में आदमी को एक रुग्णता से घिरा हुआ देखता हूं। जो आदमी दूसरों को जीतने चल पड़ता है वह आदमी अपनी इस हार को छिपाने की कोशिश में लगा है कि वह अपने को नहीं जीत पाया। इसे मैं फिर से दोहराऊं। डायोजनीज ने कहाः जो आदमी दूसरों को जीतने चल पड़ता है वह आदमी अपने मन की इस पीड़ा को भुलाने में लगा है कि वह स्वयं अपने को नहीं जीत पाया है। और दुनिया में दो ही तरह की विजय हैं। एक तो विजय है जो हम अपने बाहर दूसरों पर उपलब्ध करते हैं और एक विजय है जो हम स्वयं अपने ऊपर उपलब्ध करते हैं। और दो ही तरह के लोग भी हैं जगत में। दूसरों के जीतने के लिए आकांक्षा से भरे हुए लोग या स्वयं को जीतने की आकांक्षा से भरे हुए लोग। दूसरों को जो जीतने चल पड़ता है वह दूसरों को तो कभी जीत नहीं पाता, लेकिन स्वयं को जीतने से भी वंचित रह जाता है।

यह घटना इसलिए मैं शुरू में कहना चाहता हूं, हम सारे लोगों के जीवन के समक्ष भी दो ही तरह के मार्ग होते हैं। एक तो महत्वाकांक्षा का; दूसरों की विजय का मार्ग है, और एक स्वयं की विजय का। अधिकतर लोग दूसरों को जीतने के प्रयास में जीवन की उस संपदा से वंचित ही रह जाते हैं जो स्वयं को जीतने से उपलब्ध होती है। और जो लोग बाहर की विजय में उलझ जाते हैं, मनुष्य के जीवन में दो ही रास्तें हैं। और अधिक लोग महत्वाकांक्षा के, एंबीशन के रास्ते पर ही चलते हैं।

साधारणतः सिकंदर, नेपोलियन या हिटलर जैसे लोग बहुत कम हमें दिखाई पड़ते हैं, जो संसार-विजय के लिए निकल पड़ते हों। लेकिन हम सारे लोग भी अपनी छोटी-छोटी ताकत से संसार-विजय में लगे रहते हैं। हम सबकी यात्रा भी दूसरों की विजय के लिए है। और यह समझ लेना बहुत उपयोगी है, जरूरी भी कि आखिर

हम दूसरों की विजय में इतने उत्सुक क्यों हो जाते हैं? चाहे वह विजय धन की हो, चाहे यश की, चाहे पद की, क्यों हमारा मन इतना आतुर हो उठता है इस विजय के लिए? शायद कभी विचार भी न किया हो? विचार करेंगे तो बहुत हैरानी होगी। मनुष्य दूसरों की विजय के लिए इसलिए उत्सुक हो आता है कि अपने भीतर तो वह पाता है एक रिक्तता, एक खालीपन, एक अभाव, एक अंधेरा, भीतर तो कोई संपत्ति नहीं दिखाई पड़ती, न कोई प्रकाश दिखाई पड़ता, न कुछ पाने जैसी कोई दिशा अनुभव होती है, भीतर तो एक दरिद्रता मालूम पड़ती है। इस दरिद्रता को भरने के लिए वह बाहर की समृद्धि के पीछे आतुर हो उठता है। भीतर तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, जो भी दिखाई पड़ता है वह बाहर है। लेकिन भीतर एक रिक्तता की एक कमी, एक एंप्टीनेस का अनुभव जरूर होता है। ऐसा लगता है जैसे भीतर कुछ भी नहीं है, एक अभाव है। यह अभाव पीड़ा देता है। इस अभाव को भरने के लिए मन आतुर हो उठता है।

कैसे भरें इस अभाव को जो भीतर है?

ऐसा प्रतीत नहीं होता कि भीतर मैं कुछ हूं, भीतर पैर रखने को कोई भूमि नहीं दिखाई पड़ती, कोई सहारा नहीं दिखाई पड़ता, कोई संगी-साथी नहीं दिखाई पड़ता। भीतर एकदम असहाय, एक हेल्पलेसनेस मालूम होती है। अगर हम अकेले अपने भीतर छोड़ दिए जाएं, तो हम घबड़ा उठेंगे। ऐसे भी हम घबड़ाए हुए रहते हैं। मित्र को खोजते हैं, क्लब को खोजते हैं, मंदिर जाते हैं, सभा में बैठते हैं; शायद ख्याल भी इस बात का न हो कि ये सारी कोशिश अपने से बचने की कोशिश है। अकेले में खुद के साथ रहना बहुत कठिन है, इसलिए हम हजार उपाय करते हैं कि खुद का साथ न हो सके। कोई और साथी हो, कोई और मित्र हो, अखबार हो, रेडियो हो, किसी से बात होती हो, सिनेमा हो; लेकिन ऐसा न हो कहीं कि हम बिल्कुल अकेले छूट जाएं और कोई भी न हो। अकेले होने से हम डरते हैं। और अगर हमें मजबूरी में अकेले में रख दिया जाए तो शायद हम पागल हो जाएं।

इजिप्त के एक बादशाह ने ऐसा प्रयोग किया। मेरे जैसे किसी आदमी ने उसको कहा होगा कि अकेले होने में आदमी इतना घबड़ा जाएगा कि पागल भी हो सकता है। उसे यह बात विश्वास योग्य नहीं मालूम पड़ी। उसने कहा कि राजधानी में जो सबसे स्वस्थ आदमी हो उसे पकड़ कर ले आया जाए। एक युवक को पकड़ कर लाया गया। सब तरह से वह स्वस्थ था, प्रसन्न था, शांत था, बीमार न था। कोई आर्थिक असुविधा न थी, सब भांति प्रसन्न था। अभी-अभी उसका विवाह हुआ था। वह और उसकी पत्नी दोनों खुश थे। उस युवक को पकड़ कर राजा ने एक अकेले कमरे में बंद करवा दिया। सारी सुविधा जुटा दी, भोजन की, सोने की, कोई तकलीफ न थी वहां। उसके मकान से बहुत ज्यादा राजमहल में व्यवस्था कर दी। लेकिन द्वार पर एक ऐसा आदमी पहरे पर रख दिया जो उस युवक की भाषा नहीं समझता था। और कोई भी उससे नहीं मिल सकेगा, इसकी मनाही कर दी। एक-दो दिन तो युवक चिल्लाता रहा कि मुझे क्यों बंद किया गया है? उसने भोजन खाने से इनकार कर दिया, उसने पानी नहीं पिया। लेकिन क्या करता? दो-चार दिन बाद उसे भोजन भी लेना पड़ा, पानी भी। आठ दिन बीतते-बीतते वह राजी हो गया उस अकेलेपन में रहने को। लेकिन एक महीना पूरा नहीं हो पाया था कि राजा के लोगों ने राजा को खबर दी, युवक में पागलपन के लक्षण आने शुरू हो गए हैं। उसने अपने से ही बातें शुरू कर दी हैं।

जब कोई ओर न मिले बातें करने को तो आदमी अपने से ही बातें शुरू कर देता है। फिर यह एक ही रास्ता है उसका, अपने आप को भुलाए रखने का। तीन महीने होते-होते वह युवक बिल्कुल पागल हो चुका था। तीन महीने बाद उसे छोड़ा तो वह एकदम विक्षिप्त था। क्या हो गया था उसे? अपने को भूलने का उसे तीन महीने तक कोई उपाय नहीं मिल सका।

कोई भी स्वस्थ आदमी ऊपर से दिखाई पड़ता हो भला, भीतर एक गहरी अस्वस्थता है। उससे हम बचना चाहते हैं, उससे हम एस्केप करना चाहते हैं, पलायन करना चाहते हैं। एक आदमी नशा करने लगता है,

एक आदमी भजन-कीर्तन करने लगता है। दोनों बातें हमें भिन्न-भिन्न मालूम पड़ती हैं। दोनों बातें भिन्न-भिन्न नहीं हैं। दोनों आदमी अपने-अपने ढंग से खुद को भूलने का उपाय खोज रहे हैं।

एक आदमी संगीत सुनने लगता है, उसमें डूब जाता है। एक आदमी खेल खेलता है, कोई जुआ खेलता है, थोड़ी देर को अपने को भूलने का उपाय खोजता है। हम सारे लोग अपने आप को भूल जाने के लिए आतुर हैं। एक आदमी धन की खोज में भूल जाता है अपने आपको। चौबीस घंटे धन और धन, गिनती और गणना, उसे याद भी नहीं आ पाता कि मैं भी हूं। उसकी तिजोरी के हिसाब में उसे भूल जाता है कि मेरा भी कोई हिसाब है। एक आदमी पद की दौड़ में होता है, छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी। स्वयं की रिक्तता से जीवन भर भागने का एक क्रम चलता है। नाम हम कुछ भी देते हों, रूप कोई हो, दौड़ एक ही है कि किसी भांति भीतर की रिक्तता से हम बच जाएं, उसे भर लें या उससे भाग जाएं। पदों की दौड़ में भी वही है, छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी है, और बड़ी कुर्सी है; और एक आदमी भूले रहता है इस नशे में, इस बात को भूले रहता है कि कुर्सियां अलग हैं और मैं अलग हूं। और बड़ी से बड़ी कुर्सी भी, बड़े से बड़ा पद भी, मेरे भीतर जो खाली है उसे नहीं भर पाएगा।

एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं उससे ख्याल आ सके।

एक सम्राट के द्वार पर एक भिखारी ने सुबह ही सुबह आकर भिक्षा मांगी। भिक्षापात्र फैलाया, सम्राट द्वार पर ही खड़ा था। उसने अपने चाकरों को कहा कि जाओ, इसके भिक्षापात्र को अन्न से भर दो। लेकिन उस भिखारी ने कहाः एक शर्त पर मैं भिक्षा लेता हूं, मेरा पात्र पूरा भरोगे न? अधूरा भरा हुआ पात्र लेकर मैं नहीं जाऊंगा। राजा हंस पड़ा, उसने कहाः शायद तुझे पता नहीं, तू इस देश के सबसे बड़े सम्राट के द्वार पर भिक्षा मांग रहा है, क्या तू सोचता है तेरे इस छोटे से पात्र को भी हम भर न सकेंगे? उस भिखारी ने कहाः बहुत बड़े-बड़े सम्राटों के द्वार पर मैंने भिक्षा मांगी, अब तक कोई भी भरने का वचन नहीं दे सका। राजा के अहंकार को चोट लगी, उसने अपने मंत्री को कहा कि अब अन्न से नहीं, जाओ स्वर्ण-मुद्राओं से इसके पात्र को भर दो। मंत्री गए, स्वर्णमुद्राएं लेकर आए, लेकिन पात्र में डालने पर पता चला कि राजा गलती सौदे में पड़ गया, गलती दांव लगा बैठा है। मुद्राएं पात्र में गिरीं और कहीं खो गईं, पात्र खाली का खाली रहा। राजा घबड़ाया, लेकिन एक भिखारी के सामने हार जाना उचित न था। उसने अपने मंत्रियों को कहा कि आज मैं हूं और यह भिक्षा का पात्र है, चाहे मेरी सारी संपत्ति इसमें डाल दी जाए लेकिन भिक्षा का पात्र भरना ही होगा।

सुबह यह बात हुई थी दोपहर हो गई, राजा की तिजोरियां खाली होने लगीं, सांझ आ गई लेकिन पात्र खाली का खाली था। तब राजा घबड़ाया और उस भिखारी के पैरों में गिर पड़ा, उसने कहा, मुझे क्षमा कर दो, मुझसे भूल हो गई। लेकिन यह पात्र बहुत अदभुत मालूम होता है, कोई जादू है इसमें? कोई मंत्र सिद्ध है? क्या है यह छोटा सा पात्र मेरी पूरी संपत्ति को पी गया, और नहीं भरा। वह भिखारी हंसने लगा और उसने कहाः इसमें कोई खूबी नहीं है, इस पात्र को मनुष्य के हृदय से हमने बनाया है। मनुष्य का हृदय कभी नहीं भरता, यह पात्र भी कभी भरने को नहीं है।

यह कहानी मैंने सुनी थी और बहुत इस पर सोचता रहा। सच में ही किसी मनुष्य के हृदय का पात्र कब भरता है? कितनी संपदा मिले, कितना ही यश, कितना ही पद; जीवन में कितनी ही जीत मिल जाए, मनुष्य के मन का पात्र खाली का खाली रह जाता है। अंतिम क्षणों में भी मृत्यु जब द्वार पर दस्तक देती है, तब भी हम अपने भिक्षा का खाली पात्र लिए हुए किसी के सामने खड़े होते हैं। तब भी हम मांग रहे होते हैं, तब भी वही काम जारी रहता है कि कोई भर दे। लेकिन अब तक कोई किसी के पात्र को नहीं भर पाया है। इसी की दौड़ है, इसी की खोज है; और जब सब खोज असफल हो जाती हैं, सब दौड़ व्यर्थ हो जाती हैं, और सब द्वारों पर मांग कर भी हम खाली के खाली रह जाते हैं, तो उस विफलता में विषाद पैदा होते हैं, चिंता पैदा होती है, दुख पैदा होते हैं। दुख अपने को न भर पाने की असफलता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इसीलिए तो बुद्ध और महावीर जैसे लोगों को भी दुख का अनुभव होता है। जिनके पास सब कुछ था, उन्हें भी। बुद्ध के पास क्या कमी थी या महावीर के पास किस बात का अभाव था, लेकिन दुख का अनुभव होता है। दुख का अनुभव इसी असफलता से होता है कि हम अपने को सारा श्रम करने के बाद भी विफल पाते हैं, नहीं भर पाते हैं। यह जो विफलता है, यह जो दुख है, यह जो पीड़ा है, यह जो चिंता है, इस चिंता और दुख के विचार से ही धर्म का जन्म होता है। जो व्यक्ति मन के इस स्वभाव को समझता है कि यह नहीं भरा जा सकेगा, वही व्यक्ति धर्म की खोज में, वही व्यक्ति उस सत्य की खोज में निकलता है जो स्वयं के भीतर है। बाहर तो हम पाते हैं असफलता, क्या भीतर सफलता मिल सकती है? बाहर मांग कर तो पाते हैं कि पात्र अधूरा और खाली रह जाता है, क्या भीतर भी कोई स्रोत हो सकता है जहां पात्र भर जाए? जो लोग बाहर की दौड़ पर असफल होकर भीतर लौटते हैं, भीतर खोजते हैं, भीतर की संपदा की जिज्ञासा करते हैं, भीतर खोदने की कोशिश करते हैं कि क्या वहां भी कुछ हो सकता है? उन थोड़े से लोगों ने एक अदभुत रहस्य खोज लिया है और वह यह कि कि जो बाहर नहीं मिलता है, वह भीतर मिल जाता है।

अब तक मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में एक भी व्यक्ति यह कहने में समर्थ नहीं हुआ कि मैंने बाहर खोजा और मुझे आनंद मिला हो, मैंने बाहर खोजा और मैं तृप्त हो गया हूं, मैंने बाहर खोजा और मैंने सफलता पा ली। एक भी व्यक्ति यह नहीं कहने में समर्थ हो सका है। निर्पवाद रूप से सारी मनुष्य-जाति का अनुभव यही है। लेकिन फिर भी हर मनुष्य यही सोचता है कि मैं शायद एक अपवाद, मैं एक एक्सेप्शन सिद्ध हो जाऊं। किसी और को नहीं मिला है, लेकिन शायद मुझे मिल जाए। और यह अपवाद का धोखा ही हर मनुष्य को उस यात्रा पर ले जाता है, जो हजारों वर्षों से असफल है, जिस यात्रा में कोई सफल नहीं होता, फिर भी एक-एक व्यक्ति यही सोचता है शायद मैं भिन्न सिद्ध हो जाऊं। सिंकदर हार गए होंगे, लेकिन मैं शायद न हारूं।

अरब में एक कहावत है, परमात्मा जब लोगों को बना कर भेजता है दुनिया में, तो हर आदमी को बनाने के बाद उसके कान में एक सूत्र जरूर बोल देता है, वह यह कह देता है हर आदमी को, तेरे जैसा आदमी मैंने कोई दूसरा नहीं बनाया, तू अनूठा है। और यह बात वह हरेक के कान में बोल देता है। और यह एक बड़ा गहरा मजाक है, हर आदमी को यह ख्याल होता है मैं एक अपवाद हूं। जो कोई भी नहीं कर सका, वह मैं कर सकूंगा। जो कोई भी नहीं पा सका, वह मैं पा सकूंगा। जो किसी जीवन में संभव नहीं हुआ, वह मेरे लिए संभव होगा। यह अहंकार का बोध, यह ईगो, यह अस्मिता कि मैं कर लूंगा जो किसी को नहीं हुआ, फिर एक जीवन को असफल बना देती है। यह जानना जरूरी है कि मनुष्य का स्वभाव एक जैसा है। मनुष्य के स्वभाव में भेद नहीं है। और अगर मनुष्य का स्वभाव ही बाहर के जगत में असफल होने को बाध्य है, तो मैं भी अपवाद नहीं हो सकता हूं। इतना चिंतन जिसके भीतर पैदा हो, वह भीतर लौटने में समर्थ हो सकता है। और शायद जैसा कि हुआ आज तक, जो लोग भीतर गए हैं उनमें से भी कोई यह नहीं कह सका कि मैं भीतर गया और खाली हाथ लौटा हूं। जो भीतर गया है उसने पाया है कि वह पात्र जो हमेशा खाली था, भर गया है।

सिकंदर मरा, शायद आपको पता हो, जिस नगर में उसकी अरथी निकली, सारे लोग हैरान हो गए। अरथी के दोनों हाथ उसके बाहर लटके हुए थे। हर कोई पूछने लगा कि अरथी के बाहर क्यों हाथ लटके हुए हैं? हमेशा अरथी के भीतर हाथ होते हैं। तो पता चला कि सिकंदर ने मरते वक्त कहा था कि मेरे हाथ अरथी के बाहर लटकाए रखना, ताकि हर आदमी देख ले मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ भरे हुए नहीं हैं। लेकिन सिकंदर को मरे सैकड़ों वर्ष हो गए, उसके अरथी के बाहर लटके हुए हाथ कौन देख पाया? किसको यह ख्याल आया कि सिकंदर एक असफलता है? किसी को भी नहीं। हमें यह भ्रम ही है कि बहुत धन उपलब्ध हो, बहुत पद, बहुत यश; बाहर के जगत में एक साम्राज्य स्थापित हो जाए, हमारी अस्मिता का तो शायद कमी पूरी हो

जाएगी। लेकिन यह कमी पूरी नहीं होनी है, क्योंकि दारिद्रय है भीतर और संपत्ति होती है बाहर, उसका कोई मिलन नहीं हो पता। खालीपन है भीतर और भरते हैं जिन वस्तुओं से वह भीतर पहुंचाई नहीं जा सकती। धन को भीतर ले जाने का कोई उपाय है। धन आपके भीतर कैसे पहुंचेगा? पहुंच जाएगा आपकी तिजोरी में। लेकिन आपके भीतर कैसे पहुंचेगा? यश कैसे आपके भीतर पहुंचेगा? जो बाहर खोजा जाता है उसे भीतर ले जाने का कोई भी मार्ग नहीं है। इसलिए बाहर ढेर लगता जाता है हमारी समृद्धि का और भीतर हमारी दरिद्रता पूर्ववत ही बनी रहती है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है।

अभी कुछ ही वर्ष हुए अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति एण्ड्रू कारनेगी मरा। मरते वक्त उसके पास कोई चार अरब रुपये की संपत्ति थी। संभवतः अमरीका में सबसे बड़ी संपत्ति उसी के पास थी। चार अरब रुपये छोड़ कर वह आदमी मरा। मरने के दो ही दिन पहले उसकी जीवन-कथा लिखने वाले लेखक ने उसको पूछा कि आप तो तृप्त हो गए होंगे इतनी संपत्ति आप इकट्ठी कर पाए। एण्ड्रू कारनेगी ने उदासी से कहाः कहां तृप्त हो गया? जरा भी तृप्त नहीं हुआ हूं। दस अरब रुपया छोड़ने का मेरा इरादा था और मैं केवल चार अरब ही इकट्ठे कर पाया। क्या आप सोचते हैं एण्ड्रू कारनेगी के पास दस अरब रुपये होते तो बात हल हो जाती? नहीं हल होनी थी, दस अरब जब तक रुपये होते, कारनेगी की आकांक्षा शायद सौ अरब रुपयों की हो जाती।

जो हमारे पास है हमारी आकांक्षा हमेशा उसके आगे निकल जाती है। और तब एक भ्रम जीवन भर कायम रहता है। जीवन भर हम दौड़ते भी हैं और हर दौड़ के बाद हम पाते हैं मंजिल और आगे निकल गई। हम फिर हमेशा पीछे रह जाते हैं। आदमी हमेशा पीछे रह जाता है, आकांक्षा हमेशा आगे निकल जाती है। और तब गरीब भी गरीब रहता है, अमीर भी गरीब। वे तो दरिद्र हैं ही जो सड़कों पर भिक्षा मांगते हैं, वे भी दरिद्र रह जाते हैं जिन्हें सम्राट होने का भ्रम पैदा होता है। भीतर की दरिद्रता में कोई फर्क नहीं पड़ता है।

धर्म की जिज्ञासा शुरू होती है इसी तथ्य से कि क्या यह जो भीतर हमारे एक दरिद्र बैठा हुआ है, एक भिखारी, क्या यह भिखारी मिट सकता है? क्या ऐसा हो सकता है कि एक आंतरिक संपदा उपलब्ध हो और प्राण आनंद से भर जाएं? क्या यह हो सकता है कि भीतर का खालीपन मिट जाए, एक भरापन पैदा हो? क्या यह हो सकता है कि भीतर रिक्तता न रहे, एक पूर्णता आ जाए? इस बात का विचार, इस बात की जिज्ञासा, इस बात का प्रश्न ही मनुष्य के भीतर एक नई खोज का शुभारंभ बनता है। लेकिन शायद हम पूछते ही नहीं, शायद कभी हम रुक कर दो क्षण ठहरते भी नहीं कि जीवन की धारा पर प्रश्न कर लें, देख लें कि क्या हमने पाया है? हिसाब कर लें, कभी दो क्षण रुक कर पीछे लौट कर देख लें?

अब यहां इतने लोग हैं, किसी की दस वर्ष उम्र होगी, किसी की साठ वर्ष भी, लेकिन न दस वर्ष वाला सोचता है कि दस वर्षों में मैंने क्या पा लिया और न साठ वर्ष वाला सोचता है कि मैंने साठ वर्षों में क्या पा लिया? मेरे हाथों में क्या है? कहीं वे खाली ही तो नहीं हैं? मेरी उपलब्धि क्या है? कुछ मकान मैंने खड़े कर लिए हैं, वे उपलब्धि होंगे? कुछ जमीन पर मैंने घेरा बांध लिया है, वह मेरी उपलब्धि है? कुछ संपदा मैंने बटोर ली है, वह मेरी उपलब्धि है? मेरी उस उपलब्धि से क्या वास्ता है? क्या संबंध है? मौत मेरी, मुझे उस उपलब्धि से दूर कर देगी। जीवन भर जिसे मैंने जिसे इकट्ठा किया था, मृत्यु उससे मुझे जुदा कर देगी। तो क्या कुछ ऐसा भी मेरे पास है जिसे मृत्यु दूर न कर सके? अगर ऐसा कुछ भी हमारे पास है, जिसे मृत्यु दूर न कर सके, तो उसी संपदा का नाम आत्मा है, उसी संपदा का नाम परमात्मा है, जिसे मृत्यु हमसे दूर न कर सके। मृत्यु की कसौटी पर हमेशा जीवन की उपलब्धि को जो कस लेता है वह पाएगा कि जिसे उसने धन समझा है, जिसे उसने यश समझा है, जिसे उसने सोचा है कि यह मेरा पाना है, वह उसे मिट्टी दिखाई पड़ेगा, लेकिन मृत्यु की कसौटी पर हम कसते नहीं।

इसलिए मैं आज की सुबह इस चर्चा में आपसे यह निवेदन करना चाहूंगा, फिर आने वाली तीन चर्चाओं में आपसे उस पर विस्तार से बात हो सकेगी। मृत्यु की कसौटी ही सबसे बड़ी कसौटी है मनुष्य के समक्ष, जिस

पर वह कस कर देख ले कि उसके पास सोना है या मिट्टी। जो चीज मृत्यु की कसौटी पर व्यर्थ हो जाती हो उसे वह जान ले कि वह मिट्टी है, क्योंकि मृत्यु की ताकत केवल मिट्टी पर ही चल सकती है। जीवन पर मृत्यु की कोई ताकत नहीं चल सकती। अगर हमारे पास कोई जीवन की संपत्ति हो, तो मृत्यु वहां हार जाएगी और व्यर्थ हो जाएगी, लेकिन हमारे पास तो जो भी है वह सब मृत्यु की कसौटी पर मिट्टी सिद्ध होता है। फिर भी लेकिन हम अंत घड़ी तक उसी को सोचे चले जाते हैं, शायद कभी ख्याल पैदा नहीं होता, शायद सभी लोग एक दौड़ में हैं इसलिए ख्याल पैदा नहीं होता। हम यहां इतने लोग हैं, अगर हम सभी एक ही बीमारी से परेशान हो जाएं तो थोड़े दिनों में हमें उस बीमारी का पता होना बंद हो जाएगा। क्योंकि सभी उस बीमारी में होंगे। बीमारी का पता चल सकता है, अगर एकाध बीमारी में हो। पूरी मनुष्य-जाति एक रुग्णता से पीड़ित हो तो पता चलना मुश्किल हो जाता है। पीएगा

मैंने सुना है, एक गांव में दो कुएं थे। एक गांव का कुआं था और एक राजा के महल का। एक जादूगर उस गांव से निकला और उसने गांव के कुएं में कुछ छोड़ दिया। और कहा कि अब जो भी इसका पानी पीएगा वह पागल हो जाएगा। मजबूरी थी, लेकिन सांझ तक लोगों को पानी पीना ही पड़ा, प्यासे वे कब तक रहते? और धीरे-धीरे पूरा गांव पागल हो गया। सिर्फ राजा, उसका वजीर, उसकी रानी पागल नहीं हुए, उनका कुआं अलग था। लेकिन सांझ को गांव के जो सारे लोग जो पागल हो गए थे वे यह विचार करने लगे कि मालूम होता है राजा का दिमाग खराब हो गया। चूंकि राजा पूरे गांव से अलग मालूम पड़ने लगा, पूरा गांव पागल हो गया। संध्या उन्होंने महल के सामने बड़ी सभा इकट्ठी की और उन्होंने विचार किया कि पागल राजा को गद्दी से उतारना पड़ेगा, पागल राजा के नीचे नहीं रहा जा सकता है। राजा बहुत घबड़ाया, वह अपनी छत पर खड़ा था, उसने अपने बूढ़े वजीर को कहा कि अब क्या किया जाए? पूरा गांव पागल हो गया है। लेकिन चूंकि पूरा ही गांव पागल हो गया है इसलिए यह भी मानने को कौन राजी होगा कि वे पागल हैं और हम ठीक हैं?

वजीर ने कहाः अब एक ही रास्ता है अपने को बचाने का, हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। वे भागे हुए गए, उन्होंने उस कुएं का पानी पी लिया। फिर उस रात उस गांव में बड़ा जलसा हुआ और उस जलसे में सभी लोगों ने राजा के गले में हार पहनाए और भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया।

चूंकि सारा गांव पागल था। मनुष्य की पूरी की पूरी पीढ़ियां बाहर की दौड़ की रुग्णता से पीड़ित हैं। इसलिए जब कभी कोई आदमी एकाध भीतर की बात कहता है, तो वह हमें पागल ही मालूम पड़ता है। हम गांधी को अकारण गोली नहीं मार देते। यह किसी एकाध गोड़से का सवाल नहीं है कि कोई गोली मार देता है। हम क्राइस्ट को ऐसे ही सूली पर नहीं लटका देते, यह कोई दो-चार-दस पागलों का काम नहीं है। हम सुकरात को ऐसे ही जहर नहीं पिला देते हैं। इसके पीछे बुनियादी कारण हैं, ये लोग हमें पागल मालूम पड़ते हैं। ये लोग हमारे बीच के नहीं मालूम पड़ते, ये आउट साइडर्स मालूम पड़ते हैं। हम एक दुनिया में हैं, ये कुछ अलग आदमी मालूम पड़ते हैं। ये लोग कुछ गड़बड़ मालूम पड़ते हैं, अजनबी मालूम पड़ते हैं। ये हमारे बीच रहे तो हमें मालूम होता है कि ये सारे जीवन को गड़बड़ कर देंगे। इनकी बातें कुछ ठीक नहीं मालूम पड़तीं। इसलिए जरूरी हो जाता है कि हममे से कोई एक उठे और इनको समाप्त कर दे। इधर दस हजार वर्षों में हमारे भीतर जो स्वस्थ आदमी था वह हमें पागल मालूम हुआ, क्योंकि हम सारे लोग एक बहुत बड़ी गहरी पागल दौड़ में हैं। हमारी दौड़ का अंत तक कोई सिलसिला नहीं टूटता है। आखिरी क्षण तक भी हम वही सोचे चले जाते हैं, जिसका जीवन की गहराइयों से कोई भी नाता नहीं है। जिसका जीवन की गहराइयों से नाता है उसकी छाया भी हमारे जीवन में कभी नहीं उतरती।

एक धनपति बीमार था, मरणासन्न था, अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा कर रहा था। जीवन भर धन और धन और धन उसकी दौड़ रही थी। कभी उसने और तरफ आंख उठा कर देखा हो, यह भी उसके गांव के लोगों को पता न था। वह मर रहा था, आखिरी क्षण थे, उसने आंख खोली, और अपनी पत्नी को पूछा, मेरा बड़ा लड़का

कहां है? पत्नी के मन में बड़ा आह्लाद हुआ। यह पहला मौका था कि उसने किसी के बाबत कुछ पूछा था, यह पहला मौका था उसने प्रेम दर्शाया था, शायद अंतिम क्षणों में उसके हृदय में प्रेम उठा है, वह अपने लड़कों की बाबत पूछ रहा है। उसकी पत्नी की आंखों में आंसू भर आए, उसने कहाः आप चिंतित न हों, बड़ा लड़का आपके पास बैठा हुआ है। उसने पूछाः और इससे छोटा कहां है? पत्नी ने कहाः वह भी मौजूद है। उससे छोटा? उसके पांच लड़के थे, उसने कहाः सबसे छोटा कहां है? वह भी आपके पैर तले मौजूद है, आप चिंतित न हों। सब मौजूद हैं, आप घबड़ाएं न। वह आदमी जो मरने के करीब था, उठ कर बैठ गया और उसने कहाः इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा होगा? अगर ये पांचों यहीं पर मौजूद हैं तो फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?

पत्नी भूल में थी, वह सोचती थी यह प्रेम की वजह से याद आ रही है यह बात। वह आदमी इसका पता लगा रहा था कि इस वक्त भी कोई दुकान पर मौजूद है या नहीं? यह पूछ कर वह आदमी मर गया। यह वह पूछा कि दुकान पर फिर कौन बैठा हुआ है? और वह आदमी मर गया। इस आदमी के बाबत हम क्या सोचेंगे? यह आदमी कितना दीन-हीन आदमी था? इस पर कितनी दया आए उतनी ही थोड़ी है। इसका जीवन कैसा जीवन रहा होगा? मृत्यु के क्षण में भी, न तो प्रेम था, न प्रार्थना थी, न परमात्मा था। पैसा था। और यह स्वाभाविक है, जिसकी जीवन की पूरी धारा पैसे से जुड़ी रही हो, अंतिम क्षण में वह प्रेम से जुड़ भी नहीं सकता है।

चित्त तो एकशृंखला है, एक कंटीन्युटी है। गंगा बह रही है, कोई अगर यह कहे कि हिमालय पर तो गंगा गंदी होती है, प्रयाग में गंदी होती है, अपवित्र होती है, सिर्फ काशी के घाट पर आकर पवित्र हो जाती है, आगे फिर अपवित्र हो जाती है, तो हम कहेंगे, तुम पागल हो, क्योंकि गंगा तो एक सतत धारा है। यह नहीं हो सकता कि काशी के पहले अपवित्र हो, काशी के बाद फिर अपवित्र हो जाए। सिर्फ काशी के घाट पर पवित्र हो उठे, ऐसा कैसे होगा? धारा तो जो पहले है वही काशी के घाट पर है, वही काशी के आगे है। चित्त भी एक सतत धारा है, अगर जीवन भर वह बाहर की तरफ घूमती रही हो, तो यह असंभव है कि अंतिम क्षण में वह अंतस की तरफ घूम आए। अगर जीवन भर उसने पैसे को केंद्र बनाया हो, तो यह असंभव है कि वह कभी प्रेम को केंद्र बना ले। और जिस जीवन में प्रेम केंद्र नहीं बनता, प्रेम है आंतरिक संपत्ति, पैसा है बाह्य संपत्ति। इसलिए आप देख कर हैरान होंगे इस बात को कि जो आदमी पैसे के लिए जितना आतुर होगा उसके जीवन में प्रेम उतना ही कम होगा। यह बिल्कुल अनिवार्य है। जिसके जीवन में जितना प्रेम होगा, पैसे पर उसकी पकड़ उतनी ही कम हो जाएगी। प्रेम और पैसे की पकड़ दोनों एक साथ-साथ कभी नहीं हो सकते हैं।

ये महावीर और बुद्ध हमें धन छोड़ते दिखाई पड़ते हैं, लोग सोचते होंगे, ये त्याग कर रहे हैं। मेरी दृष्टि में मामला दूसरा है, मेरी दृष्टि में इन्हें प्रेम की संपत्ति मिल गई इसलिए पैसे की संपत्ति का अब कोई सवाल नहीं है। इन्होंने बड़ी संपत्ति पा ली है इसलिए यह छोटी संपत्ति छूट रही है। अगर किसी को हीरे-जवाहरात मिल जाएं और वह हाथ के कंकड़-पत्थर फेंक दे, इसको त्याग कौन कहेगा? कंकड़-पत्थर फेंक देगा इसलिए कि उसे हीरे मिल गए हैं। जिसे प्रेम मिल जाता है उसे पैसा व्यर्थ हो जाता है, और जिसे प्रेम नहीं मिलता उसे पैसे के अतिरिक्त कोई सार्थकता नहीं है। जीवन में एक ही सार्थकता है--पैसा। और पैसे के इर्दगिर्द जीवन घूमता हो, तो मन का पात्र अधूरा रह जाएगा। निश्चित रह जाएगा। और तब होगा दुख पैदा, तब होगी पीड़ा, तब लगेगा सब व्यर्थ है। तब उदासी चित्त को घेरेगी, संताप मन पर छाया डालेगा, और हम सबके मन पर वह डाले हुए है। हमारे जीवन में न कोई आनंद है, न कोई उत्फुल्लता है, क्या है कारण इस बात का? कारण एक ही है, हमने जीवन के वृत को बाहर के केंद्र पर घुमा रहे हैं। जो भीतर की आंतरिकता में प्रवेश पाना चाहिए था वह केवल बाहर के गली-कूचों में भटक रहा है। और जो संपत्ति स्वयं के पास थी उसे देखे बिना वह द्वार-द्वार पर भीख

मांग रहा है। और जिसे हम अपने में ही खोज कर पा सकते थे उसके लिए हम हजारों-हजारों मील की यात्राएं कर रहे हैं और पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं। थक जाते हैं पैर एक दिन, घबड़ा जाती है तबीयत, मौत करीब आने लगती है और आंखें आंसू से भर जाती हैं, और लगता है सब व्यर्थ हो गया। यह लगना स्वाभाविक है।

जितने जल्दी यह बात बोध में आ जाए कि बाहर की दौड़ व्यर्थ है, उतने ही शीघ्र भीतर की एक नई यात्रा का प्रारंभ हो सकता है। भीतर की यात्रा ही परमात्मा की यात्रा है। इसलिए मैं मंदिर में जाने को धर्म नहीं कहता हूं, न ही तीर्थ की यात्रा को धर्म कहता हूं। क्योंकि तीर्थ भी बाहर है और मंदिर भी बाहर है। यह वही बाहर की खोज वाला आदमी है--मंदिर भी बाहर बनाता है, भगवान भी बाहर खड़े करता है। उसके भगवान ऊपर आकाश में होते हैं, मंदिर बाहर होता है, तीर्थ कहीं काशी में, कहीं काबा में होता है। अभी उसकी भीतर की तरफ आंख नहीं गई। भीतर की तरफ जिसकी आंख पहुंच जाती है वह मन में ही मंदिर को उपलब्ध हो जाता है।

धार्मिक आदमी वह नहीं है जो मंदिर जाता हो, बल्कि वह है जो स्वयं मंदिर बन गया हो। और हर आदमी मंदिर बन सकता है। और तभी जीवन में वे किरणें उपलब्ध होती हैं जो आनंद की हैं, जो प्रेम की हैं, जो सौंदर्य की हैं। और तभी वह शांति मिलती है जिसे उच्छेद करने की सामर्थ्य फिर किसी में भी नहीं। और तभी वह संपदा उपलब्ध होती है जिसे खोने का कोई उपाय नहीं है। और तभी मिलता है वह अमृत जीवन जिसकी कोई मृत्यु नहीं है।

लेकिन उसके लिए भीतर की ही यात्रा करनी जरूरी है। भीतर की यात्रा के कुछ नियम हैं, भीतर की यात्रा के कुछ मार्गदर्शक हैं, भीतर की यात्रा के राह पर लगे कुछ मील के पत्थर हैं, उनकी हम आने वाली तीन चर्चाओं में बात करेंगे। अभी तो इतना ही मुझे आपसे कहना था मुझे सुबह की इस बात मेंः बाहर ही खोजते न रह जाना, क्योंकि बाहर कितनी ही, कितनी ही संपदाएं दिखाई पड़ें, वे मन के पात्र को कभी भी नहीं भर पाती हैं।

एक रात एक छोटे से गांव में एक छोटे से झोपड़े के भीतर से जोर से आवाज आने लगीः आग लगी है, मेरे भीतर आग लगी है। कोई रो रहा है, छाती पीट रहा है और जोर से चिल्ला रहा है। सारे गांव के लोग जाग गए और उस झोपड़े की तरफ भागे। झोपड़े में अंधकार था। आग तो दूर वहां कोई दीया भी एक जला हुआ नहीं था। लोगों ने दरवाजे हटाए, अंदर गए, एक बूढ़ी औरत चिल्ला रही थी, रो रही थी। उन लोगों ने कहाः पागल, आग कहां लगी है, हमें बता? कुछ लोग दौड़ कर बाल्टियों में पानी भर लाए थे। उन्होंने कहाः कहां आग है? हम उसे बुझा देंगे। वह बूढ़ी औरत जो रोती थी, हंसने लगी और उसने कहाः पागलो, अगर आग बाहर होती तो मुझे भी कुएं का रास्ता मालूम है, मेरे घर में भी बाल्टी है, मैं उसे बुझा लेती। लेकिन आग भीतर लगी है, और तुम मेरी आग नहीं बुझा सकोगे, क्योंकि जो मेरे भीतर है उसे बुझाने का उपाय मुझे ही करना होगा। और निवेदन मुझे यह करना है कि मेरे ही भीतर आग लगी होती तो भी ठीक था, तुम्हारे घर में भी भीतर आग लगी है, जाओ और वहां खोजो। वे लोग गुस्से में बड़बड़ाते हुए अपने घर चले गए, उसने व्यर्थ उनकी नींद खराब कर दी। और जाकर सो गए।

अक्सर मैं जो बातें कहूंगा तीन दिन में उनमें भी आप में से बहुतों को ऐसा लगेगा, व्यर्थ हमारी नींद खराब कर दी। और आप भी अपने घर जाकर आराम से सो जाएंगे। अक्सर ऐसा ही होता रहा है। लेकिन अगर किसी की नींद टूट जाए इन बातों से, कोई घबड़ा कर बेचैन हो जाए, किसी के भीतर बहुत तीव्र असंतोष जलने लगे, और किसी को ऐसा लगने लगे कि जीवन सचमुच एक आग पर चढ़ा हुआ है, तो निश्चित ही उसके भीतर उस पीड़ा से, उस दुख से, उस आग लगे होने के बोध से, वह संकल्प पैदा हो जाता है जो मनुष्य को आग के बाहर ले जाने में समर्थ है। असंतोष के बाहर ले जाने में समर्थ है। हमारी प्यास और हमारी पीड़ा ही हमारे ऊपर उठने का मार्ग बनती है। इधर तीन दिनों में कोशिश करूंगा कि हम जो संतोष से जीए चले जा रहे हैं, वह

टूट जाए, क्योंकि संतोष बहुत झूठा है यह। यह उतना ही झूठा है जैसे सुबह कोई आपसे पूछता है, आप ठीक तो हैं? और आप कहते हैं, बिल्कुल ठीक। बिल्कुल झूठी बात कहते हैं। हर आदमी यही कहता है, बिल्कुल ठीक हूं। अगर यह बात सच होती तो दुनिया ठीक होनी चाहिए थी। लेकिन हम सब जानते हैं, यह कहने की बात है कि हम बिल्कुल ठीक हैं, हम जरा भी ठीक नहीं हैं। जब भी कोई मिलता है, आप मुस्कुरा कर मिलते हैं, उससे भ्रम पैदा होता है, जैसे मुस्कुराहट आपकी जिंदगी में होगी। सच्चाई यह है कि भीतर सिवाय रुदन के और कुछ भी नहीं है, आंसुओं के सिवाय कुछ भी नहीं है। लेकिन हम ऊपर की मुस्कुराहट से भीतर के इन सब आंसुओं को छिपा लेने में इतने होशियार हो गए हैं कि दूसरों को तो हम धोखा देने में समर्थ हो ही जाते हैं, निरंतर दूसरों को तो धोखा देते-देते खुद को भी धोखा देने में हम समर्थ हो जाते हैं। और ऐसा भ्रम पैदा हो जाता है हम खुश हैं, हम प्रसन्न हैं, हम आनंदित हैं। सारा जीवन हमारा एक झूठा संतोष है, एक फॉल्स कंसोलेशन है, जहां सच्चाई जरा भी नहीं है।

तीन दिन में कोशिश करूंगा कि यह झूठा संतोष आपका टूट जाए। और आपके भीतर एक असंतोष पैदा हो। क्योंकि, स्मरण रहे, जब तक कोई सामान्य जीवन से असंतुष्ट नहीं हो जाता तब तक सच्चे जीवन की खोज शुरू नहीं हो सकती। इसलिए जो लोग कहते हैं, धर्म एक संतोष है, मैं आपसे कहूंगा, वे एकदम ही गलत और झूठी बात कहते हैं। धर्म तो एक बहुत गहरा असंतोष है। एक बहुत डिवाइन डिसकंटेंट है। एक बहुत गहरा असंतोष है भीतर। उससे ही धर्म की शुरुआत होती है। लेकिन हमने तो धर्म को जरूर एक संतोष बना रखा है। जो लोग धर्म को संतोष समझते हैं उनके जीवन डबरों की भांति हो जाते हैं, जिनमें पानी गंदा हो जाता है। लेकिन जो लोग जीवन को एक गहरा असंतोष समझते हैं, निरंतर पार हो जाने के लिए और पार और ऊपर उठ जाने के लिए, उनका जीवन एक सरिता बन जाता है--जो पहाड़ियों, घाटियों, मैदानों को पार करती है इस खोज में, इस तलाश में कि किसी दिन उसे अनंत सागर का मिलन हो सके। असंतोष का जीवन जो निरंतर जीवन की क्षुद्र संतोषों से ऊपर उठता चला जाए, पार करता चला जाए, वही किसी दिन परमात्मा के उस सागर को उपलब्ध होता है, जो कि वास्तविक संतोष और शांति है।

इधर इन तीन दिनों में इस संबंध में आपसे बात करूंगा। यह तो बिल्कुल प्रारंभिक थोड़े से शब्द हैं, इसके बाद चर्चा हो सकेगी।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

अपने अज्ञान का स्वीकार

... बचपन से ही सुन रहा था कि पृथ्वी पर एक ऐसा नगर भी है जहां के सभी लोग धार्मिक हैं। बहुत बार उस धर्म-नगर की चर्चा, बहुत बार उस धर्म-नगर की प्रशंसा उसके कानों में पड़ी थी। जब वह युवा हुआ और राजगद्दी का मालिक बना, तो सबसे पहला काम उसने यही किया, कुछ मित्रों को लेकर वह उस धर्म-नगर की खोज में निकल पड़ा। उसकी बड़ी आकांक्षा थी उस नगर को देख लेने की। जहां कि सभी लोग धार्मिक हों, बड़ा असंभव मालूम पड़ता था यह। बहुत दिन की खोज, बहुत दिन की यात्राओं के बाद अंततः वह एक नगर में पहुंचा जो बड़ा अनूठा था। नगर में प्रवेश करते ही उसे दिखाई पड़े ऐसे लोग जिन्हें देख कर वह चकित हो गया और उसे विश्वास न आया कि ऐसे लोग भी कहीं हो सकते हैं! उस गांव का हर आदमी अपंग था। हर किसी का एक अंग काम करता है, े उसके ही परिणाम स्वरूप ये सारे लोग अपंग हो गए हैं। देखो, द्वार पर ऊपर लिखा हैः अगर तेरा बायां हाथ पाप करने को संलग्न हो, तो उचित है कि तू अपना बायां हाथ काट देना, बजाय इसके कि पाप करे। देखो, लिखा है द्वार परः अगर तेरी एक आंख तुझे गलत मार्ग पर ले जाए, तो अच्छा है उसे तू निकाल फेंकना, बजाय इसके कि तू गलत रास्ते पर जाए। इन्हीं वचनों का पालन करके यह पूरा गांव अपंग हो गया है। छोटे-छोटे बच्चे जो अभी द्वार पर लिखे इन अक्षरों को नहीं पढ़ सकते, उन्हें छोड़ दें, तो इस नगर में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो धर्म का पालन न करता हो और अपंग न हो गया हो।

वह राजकुमार उस द्वार के भीतर प्रविष्ट नहीं हुआ। क्योंकि वह छोटा बच्चा नहीं था, और द्वार पर लिखे अक्षरों को पढ़ सकता था। उसने घोड़े वापस कर लिए और उसने अपने मित्रों से कहाः हम वापस लौट चलें अपने अधर्म के नगरों को, कम से कम आदमी वहां पूरा तो है।

इस कहानी से इसलिए मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं, सारी जमीन पर धर्मों के तथाकथित रूप ने आदमी को अपंग किया है। उसके जीवन को स्वस्थ और पूर्ण नहीं बनाया बल्कि उसके जीवन को खंडित, उसके जीवन को अस्वस्थ, पंगु और कुंठित किया है। उसके परिणाम स्वरूप सारी दुनिया में जिनके भीतर भी थोड़ा विचार है, जिनके भीतर भी थोड़ा विवेक है, जो थोड़ा सोचते हैं और समझते हैं, उन सबके मन में धर्म के प्रति एक विद्रोह की तीव्र भावना पैदा हुई है। यह स्वाभाविक भी है कि यह भावना पैदा हो। क्योंकि धर्म ने तथाकथित धर्म ने जो कुछ किया है उससे मनुष्य आनंद को तो उपलब्ध नहीं हुआ वरन और उदास और चिंतित और दुखी हो गया है। निश्चित ही मेरे देखे मनुष्य को पंगु और कुंठित करने वाले धर्म को मैं धर्म नहीं कहता हूं।

मैं तो यही कहता हूं कि अभी तक धर्म का जन्म नहीं हो सका है। धर्म के नाम से जो कुछ प्रचलित है, धर्म के नाम से जो मंदिर और मस्जिद और ग्रंथ और शास्त्र और गुरु हैं, धर्म के नाम पर पृथ्वी पर जो इतनी दुकानें हैं, उन सबसे धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। और यदि हम ठीक-ठीक धर्म को जन्म न दे सके तो इसका एक ही परिणाम होगा कि आदमी अधार्मिक होने को मजबूर हो जाए। आदमी विवशता में अधर्म की ओर गया है। धर्म ने आकर्षण नहीं दिया बल्कि विकर्षण पैदा किया है। धर्म ने बुलाया नहीं बल्कि दूर किया है। और अगर इसी तरह के धर्म का प्रचलन भविष्य में भी रहा, तो हो सकता है मनुष्य के बचने की कोई संभावना भी न रह जाए। धर्मों ने ही धर्म को जन्म लेने से रोक दिया है। और उनके रोकने का जो बुनियादी कारण है वह यही है कि अब तक हमने मनुष्य-जाति ने मनुष्य को उसकी परिपूर्णता में स्वीकार करने का साहस नहीं दिखलाया। मनुष्य के कुछ अंगों को खंडित करके ही हम मनुष्य को स्वीकार करने की बात सोचते रहे। समग्र मनुष्य को, टोटल मनुष्य को, विचार में लेने की अब तक हमने हिम्मत नहीं दिखाई। मनुष्य को काट कर, छांट कर ढांचे में ढालने की हमने कोशिश की है। उसके परिणाम में मनुष्य तो पंगु हो गया। और जिनमें थोड़ा भी विचार है वे उन ढांचों से दूर रहने के लिए मजबूर हो गए हैं।

मैंने सुना है, एक नगर के द्वार पर एक राक्षस का निवास था। और बड़ी अजीब उसकी आदत थी, वह जिन लोगों को भी द्वार पर पकड़ लेता उनसे कहता कि मेरे पास एक बिस्तर है, अगर तुम ठीक-ठीक उस बिस्तर पर सो सके, तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा, अगर तुम बिस्तर से छोटे साबित हुए, तो मैं तुम्हें खींच कर बिस्तर के बराबर करने की कोशिश करूंगा। उसमें अक्सर लोग मर जाते हैं। तुम भी मर सकते हो। और अगर तुम बड़े साबित हुए तो तुम्हारे हाथ-पैर काट कर मैं बिस्तर के बराबर करने की कोशिश करूंगा। उसमें भी लोग अक्सर मर जाते हैं। और मैं तुम्हें बताए देता हूं, अब तक एक भी मनुष्य उस बिस्तर से वापस नहीं लौट पाया है। फिर मैं उसका भोजन कर लेता हूं। उस बिस्तर के बराबर आदमी खोजना मुश्किल था। या तो आदमी थोड़ा छोटा पड़ जाता या थोड़ा बड़ा, और उसकी हत्या सुनिश्चित हो जाती।

धर्मों ने भी मनुष्यों को बनाने के ढांचे तय कर रखे हैं। आदमी या तो उनसे छोटा पड़ जाता है या बड़ा। और तब, तब पंगु होने के अतिरिक्त, अंग-भंग हो जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता है। ऐसे पंगु करने वाले धर्मों ने जितना नुकसान किया है उतना जिन्हें हम नास्तिक कहें, अधार्मिक कहें उन लोगों ने भी नहीं किया है। मनुष्य को सब तरह से जैसे जकड़ दिया गया है जंजीरों में। बात मुक्ति की और स्वतंत्रता की है, लेकिन स्वतंत्रता और मुक्ति की बात करने वाले लोभी, कारागृह को खड़ा करने वाले लोग भी हों तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। जीवन की धारा को सब तरफ से बांध कर एक सरोवर बनाने की कोशिश की जाती है। जब कि सरोवर बनते ही सरिता के प्राण सूखने लगते हैं, उसकी मृत्यु होनी शुरू हो जाती है। सरिता का जीवन है अबाध बहे जाने में, नये-नये रास्तों पर, नवीन-नवीन मार्गों पर, अज्ञात की दिशा में खोज करने में। सरिता की जीवंतता है, उसकी लिविंगनेस है। और उसी, उसी अज्ञात के पथ पर कभी उसका मिलन उस सागर से भी होता है, जिसके लिए उसके प्राण तड़पते हैं, कभी उस प्रेमी से भी उसका मिलना हो जाता है। सरोवर है सब तरफ से बंद, दीवालें खड़ी करके रह जाता है। फिर उसके प्राण सूखते तो जरूर हैं, कचरा उसमें इकट्ठा भी होता है, गंदगी उसमें भरती है, कीचड़ पैदा होती है, पानी तो धीरे-धीरे उड़ जाता है, धीरे-धीरे कीचड़ का घर ही वहां शेष रह जाता है। और उस सरोवर को सागर से मिलने की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।

जो लोग भी अपने आस-पास कृत्रिम ढांचों की, आर्टिफिशियल पैटर्न की दीवालें खड़ी कर लेते हैं और सोचते हों कि वे धार्मिक हैं, वे भूल में हैं। धर्म का ढांचों से संबंध नहीं है। धर्म का तो सहज जीवन के प्रवाह से संबंध है। धर्म सरोवर बनाने को नहीं, एक गतिमान अबाध्य गति से बहती हुई स्वतंत्र सरिता बनाने को है। तभी कभी सागर से मिलन हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य की जीवन धारा किसी अनंत सागर की खोज में निरंतर प्यासी है। उसे हम परमात्मा कहें, उसे हम कोई और नाम दें, उसे हम कुछ और शब्द दें, दूसरी बात है। लेकिन हर जीवन की धारा किसी प्रीतम के सागर को पाने को जैसे व्याकुल है और भागी जाना चाहती है। इसे हम जितना बांध लेंगे, जितना सब तरफ से दीवालें खड़ी करके कारागृह में बंद कर देंगे, उतनी ही कठिन यह यात्रा हो जाएगी और असंभव।

धर्मों ने अब तक यही किया है। मनुष्य को स्वतंत्र नहीं किया बल्कि बांधा है। मनुष्य को मुक्त नहीं किया बल्कि जंजीरें और कारागृह बनाएं हैं। और हजारों वर्ष से यह क्रम चला, हजारों वर्ष की प्रचारित बातें धीरे-धीरे फिर हमें सत्य भी प्रतीत होने लगती हैं, क्योंकि सामान्यजन केवल प्रचारित असत्य को ही सत्य मान लेने को सहज ही राजी हो जाता है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः मैंने सत्य और असत्य में एक ही फर्क पाया, ठीक से प्रचारित असत्य सत्य मालूम होने लगता है। और उसने लिखा कि मैं अपने अनुभव से कहता हूं, कैसे भी असत्य को ढंग से प्रचारित किया जाए, थोड़े दिन में लोग उसे सत्य मान लेने को राजी हो जाते हैं। तो हजारों वर्ष तक अगर कोई एक असत्य प्रचारित किया जाए, वह हमें सत्य जैसा दिखाई पड़ने लगता है। तो जो हमारे बंधन हैं,

वे भी हमें ऐसे प्रतीत हो सकते हैं जैसे हमारी मुक्ति हो। जो हमें रोकते हैं पहुंचने से, प्रतीत हो सकते हैं कि हमारी सीढ़ियां हैं और हमें ले जाती हैं।

मैंने सुना है, एक पहाड़ी सराय पर एक युवक एक रात मेहमान हुआ। जब वह पहाड़ी में प्रवेश करता था तो घाटियों में उसने किसी बड़ी अदभुत और मार्मिक आवाज से गूंजती हुई सुनी। घाटियों में कोई बड़े मार्मिक, बड़े आंसू भरे, बहुत प्राणों की पूरी ताकत से जैसे चिल्लाता और रोता था। कोई आवाज गूंज रही थी घाटियों में--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! वह हैरान हुआ कि कौन स्वतंत्रता का प्रेमी इन घाटियों में इतने जोर से आवाज करता होगा? लेकिन जब वह सराय के निकट पहुंचा, तो आवाज और निकट सुनाई पड़ने लगी, शायद सराय से ही आवाज उठती थी, शायद कोई वहां बंदी था। उसने अपने घोड़े की रफ्तार और तेज कर ली, वह सराय पर पहुंचा तो हैरान हो गया, यह किसी मनुष्य की आवाज न थी, सराय के द्वार पर पिंजरे में एक तोता बंद था और जोर से स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, चिल्ला रहा था।

उस युवक को बड़ी दया आई उस तोते पर। वह युवक भी अपने देश की आजादी की लड़ाइयों में बंद रहा था कारागृहों में और वहां उसने अनुभव किया था परतंत्रता का दुख, वहां उसने आकांक्षा अनुभव की थी मुक्त आकाश की, वहां उसकी आकांक्षा ने, वहां उसके सपनों ने स्वतंत्रता के बड़े जाल बूझे थे। आज उसे इस तोते की आवाज में अपनी वह सारी पीड़ा से कराहती हुई आत्मा का अनुभव हुआ। पर सराय का मालिक अभी जागता था, सोचा उसने रात में इस तोते को स्वतंत्र कर दूंगा। रात जब सराय का मालिक सो गया, वह युवक उठा, उसने जाकर पिंजरे का द्वार खोला। सोचा था स्वतंत्रता का प्रेमी तोता उड़ जाएगा, लेकिन द्वार खोलते ही तोते ने सींखचे पकड़ लिए पिंजड़े के और जोर से चिल्लाने लगा--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!

वह युवक हैरान हुआ! द्वार खुले थे, उड़ जाना चाहिए था, चिल्लाने की कोई बात न थी। लेकिन शायद उसने सोचा, वह मुझसे भयभीत हो, इसलिए उसने हाथ भीतर डाला, लेकिन तोते ने उसके हाथ पर चोट की, पिंजरे के सींखचों को और जोर से पकड़ लिया, युवक ने यह सोच कर कि कहीं उसका मालिक न जाग जाए, चोट भी सही, और किसी तरह बामुश्किल उस तोते को निकाल कर आकाश में उड़ा दिया। वह युवक बड़ी शांति से सो गया। एक आत्मा को स्वतंत्र करने का आनंद उसे अनुभव हुआ था। लेकिन सुबह जब उसकी नींद खुली तो उसने देखा, तोता वापस अपने पिंजरे में आकर बैठ गया, द्वार खुला पड़ा है, और तोता चिल्ला रहा है--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!

वह बहुत हैरान हुआ! वह बहुत मुश्किल में पड़ गया! यह आवाज कैसी! यह प्यास कैसी! यह आकांक्षा कैसी! यह तोता पागल तो नहीं है? वह तोते के पिंजरे के पास खड़े होकर यही सोचता था कि सराय का मालिक वहां से निकला, और उसने कहाः बड़ा अजीब है तुम्हारा तोता! मैंने इसे मुक्त कर दिया था, लेकिन यह तो वापस लौट आया। उस सराय के मालिक ने कहाः तुम पहले आदमी नहीं हो जिसने इसे मुक्त किया हो, जो भी यात्री यहां ठहरता है इसकी आवाज के धोखे में आ जाता है। रात इसे मुक्त करने की कोशिश करता है, सुबह खुद ही हैरानी में पड़ जाता है, तोता वापस लौट आता है।

उसने कहाः बड़ा अजीब तोता है तुम्हारा! उस बूढ़े मालिक ने कहाः तोता ही नहीं, हर आदमी इसी तरह अजीब है। जीवन भर चिल्लाता है--मुक्ति चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए और उन्हीं सींखचों को पकड़े बैठा रहता है जो उसके बंधन हैं और उसके कारागृह। मैंने जब यह बात सुनी थी तो मैं भी बहुत हैरान हुआ था। फिर मैंने आदमी को बहुत गौर से देखने की कोशिश की, तो मैंने पाया कि जरूर यह बात सच है। आदमी का पिंजरा दिखाई नहीं पड़ता यह दूसरी बात है, लेकिन हर आदमी किसी पिंजरे में बंद है। और आदमी पिंजरे के सींखचों को पकड़े हुए है, यह भी बहुत ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि तोते का पिंजरा बहुत स्थूल है, आदमी का पिंजरा बहुत सूक्ष्म। आंख एकदम से उसे नहीं देख पाती। लेकिन थोड़े ही गौर से देखने पर यह दिखाई पड़ जाता

है कि हम एक ही साथ दोनों काम कर रहे हैं, आकांक्षा कर रहे हैं मुक्ति की, आकांक्षा कर रहे हैं किसी विराट से मिलन की और क्षुद्र सींखचों को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि उन्हें छोड़ने का नाम भी नहीं लेते।

और कुछ लोग हैं जो हमारे इस विरोधाभास का, हमारे इस कंट्राडिक्शन का, हमारे जीवन की यह बहुत अदभुत उलझन का फायदा उठा रहे हैं। तोते के ही मालिक नहीं होते, आदमी के भी मालिक हैं। और वे मालिक भलीभांति जानते हैं कि आदमी जब तक पिंजरे के भीतर बंद है तभी तक उसका शोषण हो सकता है, तभी तक उसका एक्सप्लायटेशन हो सकता है। जिस दिन वह पिंजरे के बाहर है उस दिन शोषण की कोई दीवाल, किसी भांति का शोषण संभव नहीं रह जाएगा। और सबसे गहरा शोषण जो आदमी का हो सकता है वह उसकी बुद्धि का और उसके विचार का शोषण, उसकी आत्मा का शोषण।

दुनिया में उन लोगों ने जिन्होंने आदमी के शरीर को कारागृह में डाला हो, उनका अनाचार बहुत बड़ा नहीं है, जिन्होंने आदमी के शरीर के आस-पास दीवालें खड़ी की हों, उन्होंने कोई बहुत बड़ी परतंत्रता पैदा नहीं की। क्योंकि एक आदमी की देह भी बंद हो सकती है कारागृह में और फिर भी हो सकता है कि वह आदमी बंदी न हो, उसकी आत्मा दीवालों के बाहर उड़ान भरे, उसकी आत्मा सूरज के दूर पथों पर यात्रा करे, उसके सपने दीवालों को अतिक्रमण कर जाएं। देह बंद हो सकती है और हो सकता है कि भीतर जो बैठा है वह बंद न हो। जिन लोगों ने मनुष्य के शरीर के लिए कारागृह उत्पन्न किए, वे बहुत बड़े जेलर नहीं थे। लेकिन जिन्होंने मनुष्य की आत्मा के लिए सूक्ष्म कारागृह बनाए हैं, वे मनुष्य के बहुत गहरे में शोषक, मनुष्य के जीवन पर आने वाली चिंताओं, दुखों का बोझ डालने वाले सबसे बड़े जिम्मेवार वे ही लोग हैं। और वे लोग कौन हैं? जिन लोगों ने भी धर्म के नाम पर धर्मों को निर्मित किया है, वे सभी लोग। जिन लोगों ने भी परमात्मा के नाम पर छोटे-छोटे मंदिर खड़े किए हैं, मस्जिद और चर्च, वे सभी लोग। जिन लोगों ने भी धर्म के नाम पर शास्त्र निर्मित किए हैं और दावा किया है उन शास्त्रों में परमात्मा की वाणी होने का, वे सभी लोग। वे सभी लोग जिन्होंने मनुष्य के अंतस चित्त को बांध लेने की बड़ी सूक्ष्म ईजादें की हैं, वे सभी लोग। वे कौन सी सूक्ष्मतम जंजीरें हैं जो आदमी को बांध रखती हैं, उन संबंध में अभी कहूंगा, तीन चर्चाएं यहां मुझे देनी हैं, तीन चर्चाओं में कोशिश करूंगा कि बंधन समझ में आ सके। हम क्यों बंधन में बंधे हैं, यह समझ में आ सके। और हम कैसे बंधन से मुक्त हों सकते हैं, यह समझ में आ सके।

कौन से बंधन मनुष्य को घेर लिए हैं इतनी सूक्ष्मता से? शायद ख्याल में भी न आए। ख्याल में आएगा भी नहीं। उस तोते को भी ख्याल में नहीं आ सकता था कि मैं क्या चिल्ला रहा हूं और क्या पकड़े हुए हूं। पहला बंधन जो मनुष्य के आस-पास कारागृह को खड़ा किया है, वह है श्रद्धा का, विश्वास का, बिलीफ का। हजारों वर्षों से यह समझाया जा रहा है, विश्वास करो। यह जहर हम बच्चे को उसके पैदा होने के साथ ही पिलाना शुरू कर देते हैं। दूध शायद बाद में पिलाते हैं यह जहर पहले पिला देते हैं, विश्वास करो। और जो आदमी विश्वास करने को राजी हो जाता है उसके भीतर विचार की क्षमता हमेशा के लिए पंगु हो जाती है। उसके भीतर विचार के हाथ-पैर टूट जाते हैं, विचार की आंखें फूट जाती हैं। क्योंकि विचार और विश्वास में जन्मजात विरोध है--या तो विश्वास या विचार, दोनों एक साथ संभव नहीं हैं। क्योंकि विश्वास की पहली शर्त हैः संदेह मत करो। और विचार की पहली शर्त हैः संदेह करो, ठीक-ठीक संदेह करो। विश्वास कहता हैः शक मत करो, मान लो। विचार कहता हैः मानने की जल्दी मत करना, हैजिटेट करना, थोड़े ठहरना, थोड़े रुकना, थोड़े सोचना। विश्वास कहता हैः एक क्षण रुकने की जरूरत नहीं है। विचार कहता हैः चाहे पूरा जीवन ही क्यों न रुकना पड़े, लेकिन प्रतीक्षा करना, जल्दी मत करना, सोचना, खोजना, चिंतन करना, मनन करना और तभी, तभी शायद जो सत्य है उसकी झलक उपलब्ध हो सके।

लेकिन विश्वास बड़ा सस्ता नुस्खा है, बहुत शॉर्टकट है, बहुत सीधा सा दिखाई पड़ता है, हमें कुछ भी नहीं करना है। कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो, परमात्मा है। कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो, परमात्मा नहीं है। कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो आत्मा है। कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो स्वर्ग है, मोक्ष है।

दुनिया के ये इतने धर्म, कोई तीन सौ धर्म जमीन पर हैं, इन सबमें आपस में विरोध है। ये एक-दूसरे की बात से राजी नहीं हैं। ये एक-दूसरे के शत्रु हैं। लेकिन एक बात पर ये सब सहमत हैं कि विश्वास करो, इस जहर को पिलाने में इनका कोई विरोध नहीं। यह इन सबकी बुनियाद है। तो आप चाहे हिंदू हों, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई, अगर आप विश्वास करते हैं तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपने आंख पर किस रंग की पट्टियां बांध रखी हैं। वह हरी हैं, कि लाल, कि सफेद इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। आंख पर पट्टियां हैं, बस इतना काफी है, आपके जीवन में विचार का जन्म नहीं हो सकेगा। और न ही चाहते हैं समाज के न्यस्त स्वार्थ कि मनुष्य में विचार पैदा हो। क्योंकि विचार आधारभूत रूप से विद्रोह है, विचार में रिबेलियन छिपा है। विचार में रिवोल्यूशन छिपी है, वहां क्रांति का बीज है। जो विचार करेगा, वह आज नहीं कल, खुद तो क्रांति से गुजरेगा ही उसके आस-पास भी वह क्रांति की हवाएं फेंकेगा। क्योंकि विचार झुकने को राजी नहीं होता, विचार अंधा होने को राजी नहीं होता, विचार आंख बंद करे लेने को राजी नहीं होता।

मैंने सुना है, एक गांव में एक विचारक तेली के घर तेल खरीदने गया था। देख कर उसे वहां बड़ी हैरानी हुई। तेली तो तेल तौलने लगा, उसके ही पीछे कोल्हू का बैल कोल्हू को चलाए जाता था बिना किसी चलाने वाले के। कोई चलाने वाला न था। उस विचारक ने उस तेली से पूछा, मेरे मित्र, बड़ा अदभुत है यह बैल, बड़ा धार्मिक, बड़ा विश्वासी मालूम होता है, कोई चलाने वाला नहीं है और चल रहा है। उस तेली ने कहाः थोड़ी गौर से देखो, देखते नहीं आंखें मैंने उसकी बांध रखी हैं। आंखें बंधी हैं, उसे दिखाई नहीं पड़ता कि कोई चला रहा है या नहीं चला रहा। चलता जाता है। इस ख्याल में है कि कोई चला रहा है। उस विचारक ने कहाः लेकिन वह रुक कर जांच भी तो कर सकता है कि कोई चलाता है या नहीं? उस तेली ने कहाः फिर भी तुम ठीक से नहीं देखते, मैंने उसके गले में घंटी बांध रखी है। जब तक चलता है घंटी बजती रहती है, जब रुक जाता है घंटी बंद हो जाती है, मैं फौरन उसे जाकर उसे फिर से हांक देता हूं, ताकि उसे यह भ्रम बना रहता है कि कोई पीछे मौजूद है। उस विचारक ने कहाः और यह भी तो हो सकता है कि वह खड़ा हो जाए और सिर हिलाता रहे ताकि घंटी बजे। उस तेली ने कहाः महाराज, मैं आपके हाथ जोड़ता हूं, आप जल्दी यहां से चले जाएं, कहीं मेरा बैल आपकी बातें न सुन ले। आपकी बातें खतरनाक हो सकती हैं। बैल विद्रोही हो सकता है। आप कृपा करें, यहां से जाएं। और आगे से कोई और दुकान से तेल खरीद लिया करें। यहां आने की जरूरत नहीं है। मेरी दुकान भलीभांति चलती है, मुफ्त मुसीबत खड़ी हो सकती है।

आदमी के शोषण पर भी धर्म के नाम पर बहुत दुकानें हैं। जिन्हें हम परमात्मा के मंदिर कहते हैं, जरा भी वे परमात्मा के मंदिर नहीं हैं। दुकानें हैं, पुरोहित की ईजाद हैं। परमात्मा का भी कोई मंदिर हो सकता है जो आदमी बनाए? परमात्मा के लिए भी मंदिर की व्यवस्था आदमी को करनी पड़ेगी? क्या कैसी छोटी, कैसी अजीब सी बात है? हम बनाएंगे उसके लिए मंदिर? उसके निवास की व्यवस्था हम करेंगे? और हमारे छोटे-छोटे मकानों में वह विराट समा सकेगा? प्रवेश पा सकेगा? नहीं, यह तो संभव नहीं है। और इसीलिए जमीन पर कितने मंदिर हैं, कितने चर्च, कितनी मस्जिद, कितने गिरजे, कितने शिवालय, कितने गुरुद्वारे, लेकिन धर्म कहां है, परमात्मा कहां है। इससे ज्यादा अधार्मिक और कोई स्थिति हो सकती है जो हमारी है? और ये मंदिर और मस्जिद ही रोज अधर्म के अड्डे बन जाते हैं--हत्या के, आगजनी के, बलात्कार के। इनके भीतर से ही वे

आवाजें उठती हैं जो मनुष्य मनुष्य को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ देती हैं। इनके भीतर से ही वे नारे आते हैं जो आदमी के जीवन में हजार-हजार तरह के विद्वेष, घृणा फैला जाते हैं, हिंसा पैदा कर जाते हैं।

अगर किसी दिन किसी आदमी ने यह मेहनत उठानी पसंद की और यह हिसाब लगाया कि मंदिरों और मस्जिदों के नाम पर कितना खून बहा है, तो आप हैरान हो जाएंगे, और किसी बात पर इतना खून भी कभी नहीं बहा है। और आप हैरान हो जाएंगे कि आदमी के जीवन में जितना दुख, जितनी पीड़ा इनके कारण पैदा हुई है, और किसी कारण से पैदा नहीं हुई। और आदमी आदमी के बीच जो प्रेम हो सकता था वह असंभव हो गया है। क्योंकि आदमी आदमी के बीच चर्च और मंदिर बड़ी मजबूत दीवाल की तरह आ जाते हैं। और क्या कभी हम सोचते हैं कि जो दीवालें आदमी को आदमी से अलग कर देती हों क्या वे दीवालें आदमी को परमात्मा से मिलाने का सेतु बन सकती हैं? मार्ग बन सकती हैं? जो आदमी को ही आदमी से ही नहीं मिला पातीं, वे आदमी को परमात्मा से कैसे मिला पाएंगी?

नहीं, ये मंदिर और मस्जिद कोई भी परमात्मा के मंदिर नहीं हैं। परमात्मा का मंदिर तो सब जगह मौजूद है, क्योंकि जहां परमात्मा मौजूद है वहां उसका मंदिर भी मौजूद है। आकाश के तारों में और जमीन के घास-पात में, और वृक्षों में, और मनुष्य की और पशुओं की आंखों में, और सब तरफ, और सब जगह कौन मौजूद है? किसका मंदिर मौजूद है? इतने बड़े मंदिर को, इतने विराट मंदिर को भी जो नहीं देख पाते, वे छोटे-छोटे मंदिर में उसे देख पाएंगे? खुद उसके ही बनाए हुए भवन में जो उसे नहीं खोज पाते, वे क्या आदमी के द्वारा बनाए गए ईंट, चूने के मकानों में उसे खोज पाएंगे? जिनकी आंखें इतने बड़े को भी नहीं देख पातीं, जो इतना ओबियस है, जो इतना प्रकट है और चारों तरफ मौजूद है। चेतना के इस सागर को भी जिनका जीवन स्पर्श नहीं कर पाता, वह आदमी के बनाए हुए ईंटों की दीवालों में, कारागृहों में, बंद मूर्तियों में उसे खोज पाएगा? नासमझी है, निपट नासमझी है। जो इतने विराट मंदिर में नहीं देख पाता वह उसे और कहीं भी देखने में समर्थ नहीं हो सकता है। लेकिन ये हमने खड़े किए और हमने दावा किया कि ये परमात्मा के मंदिर हैं। और हमने लोगों से कहा, विश्वास करो। और हमने दावा किया कि आदमियों की लिखी हुई किताबें परमात्मा के वचन हैं। और हमने लोगों से कहा, विश्वास करो। और हमने जो भी ठीक समझा वह कहा, और लोगों से कहा, विश्वास करो, असंदिग्ध, संदेह मत करना, संदेह भटका देता है, संदेह भ्रम में ले जाएगा, संदेह का परिणाम नरक होगा।

हमने भयभीत किया मनुष्य को, डर दिखलाया दंड का, प्रलोभन दिखलाया स्वर्ग का कि मान लोगे तो स्वर्ग है, न मानोगे तो नरक है। और ऐसे हमने मनुष्य के लोभ और भय को उत्प्रेरित किया। और हजार-हजार वर्षों से एक शिक्षा दी विश्वास कर लेने की। और विश्वास में फिर हम बड़े होते गए। और परिणाम यह है कि कितने लोग हैं जिन्हें जीवन में परमात्मा की किरण का बोध हो पाता है? पांच हजार या दस हजार साल की विश्वास की शिक्षा कितने लोगों को ईश्वर के निकट ले गई? कहां हैं वे लोग? वे तो खोजे से भी दिखाई नहीं पड़ते। तो क्या दस हजार साल का यह परीक्षण काफी लंबा परीक्षण नहीं हो गया है? क्या यह काफी मौका नहीं था कि विश्वास के द्वारा जीवन बदल जाता और अगर दस हजार वर्षों में यह नहीं हुआ तो यह कब होगा?

मैं आपसे निवेदन करूंगा, विश्वास असफल हो गया है, पूरी तरह असफल हो गया है। बहुत समय हम दे चुके उसके लिए, उससे कुछ भी नहीं हुआ है सिवाय इसके कि आदमी और अंधा हुआ हो। आदमी और नीचे गिरा हो। आदमी ने और आत्मिक बल खो दिया हो। आदमी के जीवन में कोई आनंद की लहर न तो पैदा हुई, न कोई अमृत का दर्शन हुआ, न किसी परमात्मा की सन्निधि मिली।

मैं निवेदन करना चाहता हूं, विश्वास पिंजरे का सींखचा है, क्योंकि जब भी हम बिना जाने किसी बात को मान लेते हैं, तो हम अपने को अंधा करने के लिए तैयार होते हैं। जब भी हम बिना अनुभव किए किसी बात को स्वीकार कर लेते हैं, तब हम अपने भीतर जो विवेक की ऊर्जा थी, उसकी हत्या कर देते हैं। और यह सवाल

नहीं है कि हम क्या मानने को राजी हो जाएं? अगर हिंदुस्तान में आप पैदा हुए हैं, आप मान लेंगे, ईश्वर है, और अगर रूस में पैदा हुए हैं, तो वहां का कम्युनिस्ट धर्म लोगों को समझाता है, ईश्वर नहीं है, वहां का बच्चा इसको मान लेता है। वे भी कहते हैं, विश्वास करो। हम कहते हैं, गीता पर; वे कहते हैं, दास कैपिटल पर। लेकिन विश्वास के मामले में उनका भी कोई झगड़ा नहीं है। यह कम्युनिज्म सबसे नया धर्म है। और यह चाहे रूस में विश्वास दिलाया जाए कि ईश्वर नहीं है, चाहे भारत में कि ईश्वर है, लेकिन दोनों ही बातों को जो लोग स्वीकार कर लेते हैं, वे लोग अपने जीवन में कभी सत्य की खोज नहीं कर सकेंगे।

सत्य की खोज के लिए पहली जरूरत है कि जो मैं नहीं जानता हूं, जो मेरा अनुभव नहीं है, जो मेरी प्रतीति नहीं है, उसे मैं स्पष्ट रूप से कह सकूं कि मैं नहीं जानता हूं। मैं कह सकूं कि मुझे पता नहीं है। मैं अपने अज्ञान को स्वीकार कर सकूं। सत्य के खोजी की पहली शर्त, पहला लक्षण हैः अपने अज्ञान का स्वीकार। लेकिन विश्वासी अज्ञान को स्वीकार नहीं करता, वह यह मानने को राजी नहीं होता कि मैं नहीं जानता हूं। उसे तो दूसरे लोग जो सिखाते हैं वह मान लेता है कि यह मेरा जानना है।

अगर मैं आपसे पूछूं, आप ईश्वर को जानते हैं? तो आपके भीतर से कोई कहेगा हां, ईश्वर है, नहीं तो दुनिया किसने बनाई? ये बातें सिखाई हुई हैं। ये दलीलें सुनी हुई हैं और इनको हम पकड़ कर बैठ गए हों। तो हम रुक गए वहीं, हमारी खोज बंद हो गई। हमने आगे जाने की फिर कोशिश नहीं की। विश्वास कभी भी आगे नहीं ले जाता। संदेह आगे ले जाता है। क्योंकि संदेह से पैदा होती है जिज्ञासा, इंक्वायरी। और इंक्वायरी गति देती है प्राणों को नये-नये द्वार खोलने की, नये-नये मार्ग छान लेने की, दूर-दूर कोनों-कोनों तक खोज-बीन कर लेने की कि कहीं कुछ हो मैं उसे जान लूं। जो जानना चाहता है धर्म को, परमात्मा को, प्रभु को या सत्य को, उसे अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेने के लिए तैयार होना चाहिए। लेकिन हम तो झूठे ज्ञान को मान लेने को तैयार हैं। और फिर उस ज्ञान में, उस विश्वास में हमें भ्रम पैदा हो जाता है हमारे भीतर कि हम जानते हैं। और जिसको हम जानते हैं उससे हमारा संबंध समाप्त हो जाता है। क्योंकि उसके प्रति फिर हमारी कोई जिज्ञासा नहीं, कोई खोज नहीं, उसके प्रति हमारे भीतर कोई ऊहापोह नहीं, कोई चिंतन नहीं, फिर हमारा बंद हो गया मनन। और हमारे भीतर जो विचार की बड़ी ऊर्जा थी वह कुंठित पड़ी रह जाएगी।

स्मरण रखें, विचार तो प्रत्येक का जन्मजात हिस्सा है। विश्वास, विश्वास सिखाए जाते हैं। विश्वास लेकर कोई पैदा नहीं होता, बिलिव्स लेकर कोई पैदा नहीं होता। सब विश्वास सिखाए जाते हैं। लेकिन विचार लेकर हरेक पैदा होता है। विचार परमात्मा से मिलता है, विश्वास धर्म-पुरोहित से। विश्वास मिलते हैं समाज के अगुओं से, समाज के न्यस्त स्वार्थ शोषकों से, समाज के ढांचे को कायम रखने वाले लोगों से। और विचार, विचार प्रत्येक की आत्मा की अपनी शक्ति है। जो विचार से चलेगा वह तो पहुंच सकता है, जो विश्वास पर रुक जाता है उसक ा पहुंचना असंभव है।

पहला सींखचा है हमारे बंधन का, वह है श्रद्धा। नहीं, श्रद्धा नहीं चाहिए, चाहिए सम्यक संदेह, राइट डाउट, चाहिए स्वस्थ संदेह। इन मुल्कों में हम देखें जहां श्रद्धा का प्रभाव रहा वहां विज्ञान का जन्म नहीं हो सका। आगे भी नहीं हो सकेगा। क्योंकि जहां श्रद्धा बलवती है वहां खोज ही नहीं पैदा होती। जिन मुल्कों में विज्ञान का जन्म हुआ, वह तभी हो सका जब श्रद्धा के सिंहासन पर संदेह विराजमान हो गया। आज भी जो कौमें विज्ञान की दृष्टि से पिछड़ी हैं, वे वही कौमें हैं जिनका विश्वास पर आग्रह है। और न केवल विज्ञान के लिए यह बात सच है, धर्म के लिए भी उतनी ही सच है, क्योंकि धर्म तो परम विज्ञान है, वह तो सुप्रीम साइंस है। वैज्ञानिक तो फिर भी हाइपोथिसिस को मान कर चलता है थोड़ा-बहुत, एक अनुमान स्वीकार करता है, एक परिकल्पना स्वीकार करता है, लेकिन धर्म का खोजी परिकल्पना को भी स्वीकार नहीं करता, कुछ भी स्वीकार नहीं करता, निपट सहज जिज्ञासा को लेकर गतिमान होता है। प्रश्न तो उसके पास होते हैं, उत्तर उसके पास नहीं

होते। पूछता है जीवन से, खोजता है बाहर और भीतर और बिना कुछ स्वीकार किए खोजता चला जाता है, खोजता चला जाता है। जब स्वीकार नहीं करता है तो उसकी खोज की मेधा तीव्रतर होती चली जाती है, इंटेंस से इंटेंस होती चली जाती है। और एक दिन उसकी यह प्यास और खोज इतनी गहनतम, इतनी चरम तीव्रता को उपलब्ध हो जाती है कि उसी चरम तीव्रता में, उसी चरम तीव्रता के उत्ताप में एक द्वार खुल जाता है और वह जानने में समर्थ होता है।

जिज्ञासा चाहिए, विश्वास नहीं। और विश्वास हमारा पहला बंधन है जो हमें चारों तरफ से बांधे हुए है। ठीक उसके साथ ही बंधा हुआ दूसरा बंधन है जिसने हमारा कारागृह बनाया, और वह है, अनुगमन, फॉलोइंग, किसी दूसरे के पीछे चलना। किसी को मान लेना विश्वास है, किसी के पीछे चलना अंधानुकरण है। और इधर हजारों वर्षों से हमें यह सिखाया जाता रहा हैः दूसरों के पीछे चलो, दूसरे जैसे बनो, राम जैसे बनो, कृष्ण जैसे बनो, बुद्ध जैसे बनो। और अगर बात, पुराने नाम फीके पड़ गए हैं तो हमेशा नये नाम मिल जाते हैं--गांधी जैसे बनो, विवेकानंद जैसे बनो। लेकिन आज तक किसी ने भी हमसे नहीं कहा कि हम अपने जैसे बनें। किसी दूसरे जैसा कोई क्यों बने? और क्या यह संभव है कि कोई किसी दूसरे जैसा बन सके? क्या यह आज तक कभी संभव हुआ है कि दूसरा राम पैदा हो? दूसरा बुद्ध कि दूसरा क्राइस्ट? क्या तीन-चार हजार वर्ष की नासमझी भी हमें दिखाई नहीं पड़ती।

क्राइस्ट को हुए दो हजार साल होते हैं, दो हजार साल में कितने पागलों ने यह कोशिश नहीं की कि वे क्राइस्ट जैसे बन जाएं? लेकिन क्या कोई दूसरा क्राइस्ट बन सका? नहीं बन सका। क्या इससे कुछ बात स्पष्ट नहीं होती है? क्या यह स्पष्ट नहीं होता है कि हर मनुष्य एक अद्वितीय है, यूनीक व्यक्तित्व है। कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा बनने को पैदा भी नहीं हुआ। परमात्मा के घर कोई कारखाना नहीं है फोर्ड जैसा कि एक सी कारें निकालता चला जाए। परमात्मा कोई कारखाना नहीं है, कोई ढांचा नहीं है। शायद परमात्मा एक कवि है, शायद एक चित्रकार है जो रोज नये चित्र बनाता है, रोज नई कविता लिखता है। शायद इतना जीवंत है उसका उत्पादन, उसका सृजन कि वह रोज नई प्रतिमाएं गढ़ लेता है। पुरानी प्रतिमाओं पर लौटने योग्य स्थिति अभी तक भी उसकी नहीं आई है। अभी भी नये के सृजन की क्षमता उसकी मौजूद है। इसलिए रोज नया-नया। हर व्यक्ति नया है और अलग है और पृथक है। और जिस दिन यह संभव होगा कि सारे व्यक्ति एक जैसे हो जाएं, उस दिन आदमी नहीं होगा जमीन पर, मशीनें होंगी। उस दिन से ज्यादा दुर्भाग्य का कोई दिन नहीं होगा।

तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूंः अंधानुकरण; किसी दूसरे जैसा बनने की कोशिश से आदमी बहुत गहरे बंधन में पड़ता है। और बंधन में इसलिए पड़ता है कि दूसरे जैसा तो वह कभी बन ही नहीं सकता, यह असंभावना है, यह इंपासिबिलिटी है। लेकिन इस कोशिश में अभिनय कर सकता है दूसरे जैसा, तो उसकी आत्मा अलग हो जाती है, अभिनय अलग हो जाता है। राम तो नहीं बन सकता कोई लेकिन रामलीला का राम बन सकता है। रामलीला का राम बिल्कुल झूठा आदमी है। ऐसे आदमी की जमीन पर कोई भी जरूरत नहीं है। रामलीला का राम एक अभिनय है, एक एक्टिंग है। ऊपर से हम कुछ ओढ़ ले सकते हैं, भीतर आत्मा होगी पृथक और ये ओढ़े हुए वस्त्र होंगे अलग। इन दोनों के बीच एक द्वंद्व होगा, एक कांफ्लिक्ट होगी, एक सतत कलह होगी। और अभिनय कभी भी आनंद नहीं ला सकता, देखने वालों को लाता हो यह दूसरी बात है। लेकिन जो अभिनय कर रहा है वह निरंतर यह पीड़ा अनुभव करता है कि मैं किसी और की जगह खड़ा हूं, मैं अपनी जगह नहीं हूं, मैं कोई और हूं, मैं वही नहीं हूं मैं जो हूं। वैसा आदमी कभी आत्मस्थित नहीं हो पाता, क्योंकि वह निरंतर दूसरे के अभिनय में व्यस्त होता है।

यह भी हो सकता है कि कोई राम का अभिनय इतनी कुशलता से करे कि खुद राम भी मुसीबत में पड़ जाएं, यह हो सकता है। क्योंकि अभिनेता को भूल-चूक नहीं करनी पड़ती। उसका सब पाठ रटा हुआ तैयार

होता है। खुद राम से भूल-चूक हो सकती है, क्योंकि पाठ तैयार नहीं है, पहले से सब सिखाया हुआ नहीं है, जिंदगी रोज सामने आती है, असली आदमी भूल-चूक कर सकता है। नकली आदमी कभी भूल-चूक नहीं करता। इसलिए जो आदमी कभी भूल-चूक न करता हो, समझ लेना उस आदमी में कुछ नकली मौजूद है। वह किसी ढांचे में ढला हुआ आदमी है, जिंदा नहीं है। जिंदगी में भूल-चूकें हैं। तो यह हो सकता है कि रामलीला का अभिनय किसी ने बीस बार किया हो, राम को तो बेचारों को एक ही बार मौका मिला, बीस बार मौका नहीं मिला, यह हर बार ज्यादा कुशल होता चला जाएगा। और ऐसा भी हो सकता है एक दिन अगर असली राम के सामने भी इसे खड़ा कर दें, तो जनता इस नकली को पूजे, असली को छोड़ दे। अक्सर ऐसा होता है। क्योंकि यह होगा बहुत कुशल, इसकी इफिसिएंसी, इसकी कुशलता का मुकाबला राम नहीं कर सकते।

ऐसा एक दफा हुआ, ऐसी एक घटना घटी। चार्ली चैपलीन को उसके जन्म-दिन पर, एक विशेष जन्म-दिन पर, पचासवीं वर्षगांठ पर कुछ मित्रों ने चाहा कि एक अभिनय हो, सारी दुनिया से कुछ अभिनेता आएं और चार्ली चैपलीन का अभिनय करें। और उनमें जो प्रथम आ जाए... वैसे तीन लोगों को पुरस्कार इंग्लैंड की महारानी दे। सारे यूरोप में प्रतियोगिता हुई, सौ प्रतियोगी चुने गए। चार्ली चैपलीन ने मन में सोचा, मैं भी किसी दूसरे गांव से जाकर मैं भी क्यों न सम्मिलित हो जाऊं? मुझे तो प्रथम पुरस्कार मिल ही जाना है। इसमें कोई शक-सुबहा की बात नहीं, मैं खुद चार्ली चैपलीन हूं। और जब बात खुलेगी तो लोग हंसेंगे, एक मजाक हो जाएगी।

मजाक हुई जरूर, लेकिन दूसरे कारण से हुई, चार्ली चैपलीन को द्वितीय पुरस्कार मिला। और जब बात खुली कि खुद चार्ली चैपलीन भी उन सौ अभिनेताओं में सम्मिलित था, तो सारी दुनिया हंसी और हैरान हो गई कि यह कैसे हुआ? एक दूसरा आदमी बाजी ले गया चार्ली चैप्लिन होने की प्रतियोगिता में और चैपलीन खुद नंबर दो रह गया।

तो हो सकता है राम हार जाएं, महावीर के साधुओं से महावीर हार जाएं, बुद्ध के भिक्षुओं से बुद्ध हार जाएं, क्राइस्ट के पादरियों से क्राइस्ट हार जाएं, इसमें कोई हैरानी नहीं। लेकिन यह जानना चाहिए कि चाहे कोई कितना ही कुशल अभिनय करे, उसके जीवन में सुवास नहीं हो सकती, वह कागज का ही फूल होगा, वह असली फूल नहीं हो सकता। और यह चेष्टा में कि वह दूसरे का अंधानुकरण करे, वह एक बहुमूल्य अवसर खो देगा जो स्वयं की निजता को पाने का था। ऐसी ही हो जाएगी बात, आपकी बगिया में मैं आऊं और आपके फूलों को समझाऊं, गुलाब को कहूं तू कमल हो जा, चमेली को कहूं तू चंपा हो जा। पहली तो बात है, फूल मेरी बात सुनेंगे नहीं, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं कि हर किसी की बात सुनें। कोई उपदेशक वगैरह उनके बीच नहीं होता। पर हो सकता है आदमियों के साथ रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों, आदमी के साथ रह कर कोई भी बिगड़ सकता है। जानवर जो जंगल में रहते हैं उनको वे बीमारियां नहीं होती हैं, आदमी के साथ रहने लगते हैं उन्हीं बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। फिर आदमी की नकल में वेटेनरी डाक्टर को भी हमें तैयार करना पड़ता है। हो सकता है आपके साथ रहते-रहते बगिया के फूलों की आदत बिगड़ गई हो, और वे सुनने को राजी हो जाएं और उपदेश उन पर काम कर जाए। सीधे-साधे फूल हैं, हो सकता है मान लें। और गुलाब कमल होने की कोशिश करने लगे, चंपा चमेली होने की। फिर क्या होगा? उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। एक बात तय है फिर कुछ भी हो, उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब के भीतर कमल होने का कोई व्यक्तित्व नहीं है। लाख कोशिश करे वह कमल नहीं हो सकता। लेकिन कमल होने की कोशिश में सारी ताकत व्यय हो जाएगी और गुलाब भी नहीं हो सकेगा। गुलाब का फूल भी उसमें पैदा नहीं होगा।

आदमी की बगिया ऐसी ही वीरान हो गई है। सोचें, कभी अगर हम बीस-पच्चीस लोगों के नाम दुनिया से अलग कर दें, तो आदमी के दस हजार वर्षों में कितने फूल लगे? एक बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट

को, लाओत्सु को, कनफ्यूशियस को, इनको छोड़ दें, बीस नाम अलग कर दें, मनुष्य-जाति के दस हजार साल में बाकी किन आदमियों के जीवन में फूल लगे? और क्या यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि अरबों लोग पैदा हों, एक-दो आदमी के जीवन में फूल आएं और बाकी लोग बिना फूल के बांझ रह जाएं? कौन है इसके लिए जिम्मेवार? मेरी दृष्टि में अनुकरण इसके लिए जिम्मेवार है। क्या आपको पता है क्राइस्ट ने किसका अनुकरण किया? क्राइस्ट किसकी कार्बनकॉपी बनना चाहते थे? क्या कहीं उल्लेख है कि कृष्ण ने किसी का अनुकरण किया हो? या कहीं यह लिखा है किसी किताब में और किसी धर्मग्रंथ में कि बुद्ध किसी के पीछे चले हों? नहीं, वे ही थोड़े से लोग इस जमीन पर सुगंध को उपलब्ध हुए जो अपनी निजता की खोज किए, किसी के पीछे नहीं गए।

लेकिन हम अजीब पागल हैं, हम उन्हीं लोगों के पीछे जा रहे हैं जो किसी के पीछे कभी नहीं गए। और जब तक हम किसी का अनुसरण करने की कोशिश करेंगे तब तक हमारे व्यक्तित्व में, हमारे व्यक्तित्व में वह मुक्ति, वह स्वतंत्रता पैदा नहीं हो सकती।

दूसरे का अनुकरण गहरी से गहरी परतंत्रता है। मैं बांधता हूं फिर अपने को। दूसरा हो जाता है मेरे लिए आदर्श। और उसके अनुकूल मैं अपने को बांधने लगता हूं, कसने लगता हूं। फिर एक पिंजड़ा तैयार हो जाता है, और उस पिंजरे के सींखचों को पकड़ कर मैं चिल्लाता हूं, स्वतंत्रता, तो बहुत हंसी जैसी बात हो जाती है।

न तो चाहिए मनुष्य में विश्वास और न चाहिए मनुष्य में अंधानुकरण। चाहिए मनुष्य में विचार, चाहिए मनुष्य में निजता की खोज, चाहिए... हो सकता है, आनंद लें पूरी तरह खिलने का, सवाल महावीर और बुद्ध होने का नहीं है, सवाल जो भी आप हैं उसके पूरी तरह खिल जाने का। और जिस दिन आप पूरी तरह खिलते हैं उसी दिन आपके जीवन में धर्म का अनुभव शुरू होता है, उसके पहले नहीं।

पंगु और कुंठित व्यक्तित्व जीवन के सत्य से कोई संपर्क नहीं साध सकता। चाहिए परिपूर्ण स्वस्थ और खिला हुआ फूल की भांति व्यक्तित्व, जो अपने सारे प्राणों को विकसित कर सके, तब, तब जीवन के चारों तरफ के संदेश उसे मिलने उपलब्ध हो जाते हैं, शुरू हो जाते हैं।

मैं यह अंत में निवेदन करूंगाः मनुष्य के बंधन गहरे अर्थों में दो हैं--विश्वास के और अनुकरण के। जो व्यक्ति इन बंधनों से अपने को मुक्त कर लेता है, वह कदम रख रहा है सत्य की तरफ, वह धार्मिक होने की तरफ कदम रख रहा है, उसके भीतर धार्मिक चित्त पैदा हो गया है। धार्मिक चित्त वह नहीं है जो किन्हीं मंदिरों में जाकर सिर टेकता हो, किन्हीं शास्त्रों को लेकर सिर पर घूमता हो। नहीं, धार्मिक चित्त वह है जो अपने आस-पास अपनी चेतना पर किसी तरह के बंधनों को पोषण नहीं देता है। सब तरह के बंधनों को शिथिल करता है, तोड़ता है। और तब चेतना के भीतर जो छिपा है उसके प्रकट होने का द्वार खोजता है।

ये मैंने कुछ थोड़ी सी बातें आपसे कहीं, ये बातें बिल्कुल नकारात्मक हैं, बिल्कुल निगेटिव हैं। लेकिन कोई माली बगीचा बनाना चाहे तो पहले पुराने पौधों को निकाल अलग कर देता है, घास-पात उखाड़ देता है, जड़ें निकाल कर बाहर फेंक देता है, पत्थर-कंकड़ अलग कर देता है, ताकि भूमि तैयार हो जाए, ताकि फिर नये बीज बोए जा सकें। तो मेरी इस पहली चर्चा में कुछ चीजों को मैंने तोड़-फोड़ करने की कोशिश की है, कुछ अलग कर देने की, ताकि आप तैयार हो सकें उन बातों के लिए जिन्हें मैं बीज कहता हूं। और जो अगर भीतर पहुंचे तो उनसे आपके जीवन में एक अंकुरण हो सकता है, एक पल्लवन हो सकता है, कुछ आ सकती है सुवास। हर आदमी पैदा हुआ है एक फूल बन सके, एक सुवास उसके जीवन में आ सके। और जो आदमी बिना ऐसा बने विदा हो जाता है, उसके जीवन में कोई धन्यता, कोई कृतार्थता नहीं होती।

धन्य हैं वे थोड़े से लोग ही जो जीवन के इस अवसर को सरिता की भांति सागर तक दौड़ने का अवसर बना लेते हैं। धन्य हैं वे लोग जो सरिता की भांति सागर को उपलब्ध हो जाते हैं। जीवन की परिपूर्णता का

आनंद, जीवन के अमृत का बोध केवल उन्हीं को उपलब्ध हो पाता है। यह हम सब का जन्मसिद्ध अधिकार है। अगर हम मांग करें तो, लेकिन अगर हम मांग ही न करें, या हम मांग भी करें चिल्लाएं--स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! और किन्हीं सींखचों को पकड़े रहें, तो कौन जिम्मेवार हो सकता है? प्रत्येक व्यक्ति ही अपने लिए जिम्मेवार है अपने बंधन के लिए, अपने कारागृह के लिए। और जिस दिन सोचेगा, तोड़ सकेगा उस कारागृह को।

एक अंतिम कहानी और मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।

रोम में एक बहुत अदभुत लोहार हुआ। उसकी बड़ी कीर्ति थी सारे जगत में। दूर-दूर के बाजारों तक उसका सामान पहुंचा। उसने बहुत धन अर्जित किया। लेकिन जब वह अपनी प्रतिष्ठा के चरम शिखर पर था और रोम के सौ बड़े प्रतिष्ठित नागरिकों में उसकी स्थिति बन गई थी, तभी रोम पर हमला हुआ, दुश्मन ने रोम को रौंद डाला और सौ बड़े नागरिकों को गिरफ्तार कर लिया। उनके हाथ-पैरों में बहुत मजबूत वजनी जंजीरें पहना दी गईं और उन्हें फिंकवा दिया गया जंगलों में ताकि जंगली जानवर उन्हों खा जाएं। वे जंजीरें बहुत मजबूत, बहुत वजनी थीं, उनको रहते एक कदम चलना भी मुश्किल था, असंभव था। निन्यानबे लोग तो रो रहे थे .जार-.जार, उनके हृदय आंसुओं से भरे थे, उनके सामने मृत्यु के सिवाय कुछ भी न था। लेकिन वह लोहार बहुत कुशल कारीगर था, वह हंस रहा था, वह निश्चिंत था। उसे ख्याल था, कोई फिकर नहीं, कैसी ही जंजीरें हों मैं खोल लूंगा। अपने बच्चों को, अपनी पत्नी को विदा देते वक्त उसने कहाः घबड़ाओ मत, सूरज डूबने के पहले मैं घर वापस आ जाऊं गा। पत्नी ने भी सोचा, बात ठीक ही है, वह इतना कुशल कारीगर था।

फिर उन सब लोगों को जंगलों में फिंकवा दिया गया। वह लोहार भी एक जंगली खड्ड में डाल दिया गया। गिरते ही उसने पहला काम किया, अपनी जंजीरें उठा कर देखीं कि कहीं कोई कमजोर कड़ी हो, लेकिन जंजीरों को देखते ही वह छाती पीट-पीट कर रोने लगा। उसकी हमेशा से आदत थी, जो भी बनाता था कहीं हस्ताक्षर कर देता था। जंजीरों पर उसके हस्ताक्षर थे। वे उसकी ही बनाई हुई जंजीरें थीं। उसने कभी सोचा भी न था कि जो जंजीरें मैं बना रहा हूं वे एक दिन मेरे ही पैरों में पड़ेंगी और मैं ही बंदी हो जाऊंगा। अब वह रोने लगा, रोने लगा इसलिए कि अगर ये जंजीरें किसी और की बनाई हुई होतीं तो तोड़ भी सकता था। वह भलीभांति जानता था, कमजोर चीजें बनाने की उसकी आदत नहीं, यही तो उसकी प्रतिष्ठा थी। जंजीरें उसकी बनाई हुई थीं, उन्हें तोड़ना मुश्किल था, वे कमजोर थी ही नहीं।

उस कुशल कारीगर को जो मुसीबत अनुभव हुई होगी, हर आदमी को जिस दिन वह जाग कर देखता है, ऐसी ही मुसीबत अनुभव होती है। तब वह पाता है हरजंजीर पर मेरे हस्ताक्षर हैं। और हर जंजीर मैंने इतनी मजबूती से बनाई है, क्योंकि मैंने तो उसे स्वतंत्रता समझ कर बनाया था, कभी सोचा भी न था कि यह जंजीर... तो स्वतंत्रता को खूब मजबूती से बनाया था, मैंने इसे धर्म समझा था, खूब मजबूती से तैयार किया था, मैंने इसे मंदिर समझा था। मैंने कभी सोचा भी न था कि यह कारागृह है। खूब मजबूत बनाया था। उस लोहार की जो हालत हो गई वह करीब-करीब हर उस आदमी को अनुभव होती है जो जाग कर अपनी जंजीरों की तरफ देखता है। लेकिन वह लोहार सांझ को घर पहुंच गया था। वह कैसे पहुंचा, वह मैं रात आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को अंत में प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।